प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बम्बई राज्य)

०

पहली बार : ५,०००
मई १९५७
मूल्य : पचास नये पैसे (आठ आना)

मुद्रक :
बलदेवदास,
संसार प्रेस,
काशीपुरा, वाराणसी

प्रकाशकीय

महात्मा भगवानदीनजी की 'आज का धर्म' पुस्तक पाठकों तक पहुँच रही है।

महात्माजी मौलिक विचारक और लेखक हैं। धर्म और समाज के विषय में उन्होंने जो कुछ अब तक लिखा है, उसका साहित्य और जीवन-निर्माण में विशेष मूल्य है। उनकी युक्तियाँ और उनके तर्क अपने होते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि वे अपने विचारों में प्रकृति और मानव-विज्ञान की प्रगति को कभी नहीं भुलाते। भाषा तो उनकी जानदार होती ही है।

आज सर्वोदय-विचार शासन-मुक्त समाज की ओर बढ़ रहा है। महात्माजी की प्रस्तुत पुस्तक में भी सत्य के आदर्श रूप की कल्पना शासन-मुक्त समाज के रूप में ही प्रस्तुत की गयी है।

आशा है, यह पुस्तक पाठकों को नये सामाजिक मूल्यों को समझने में सहायक होगी।

काशी
मई-दिवस, १९५७

—प्रकाशक

अनुक्रम

०

हर युग का नया धर्म   : १ :

कर्तव्य के अर्थ में धर्म एकरूप नहीं रहता

विषय सुंदर है। अटपटा नहीं लगना चाहिए; अगर लगे तो समझना चाहिए, धर्म कभी एकरूप नहीं रहता। जिन मानों में एकरूप रहता है, वह सबके काम की चीज नहीं—इने-गिने आदमियों के काम की चीज है। जैसे पानी समझदारों के लिए भाप, बादल, कोहरा, ओला, बरफ आदि रूपों में एक है, पर सबके लिए अलग है, वैसे ही धर्म कर्तव्य के अर्थों में कभी एक-रूप नहीं रह सकता। वेद के समय के कर्तव्य और महावीर और बुद्ध के समय के कर्तव्य और यहाँ तक कि पारसनाथ और महावीर, जो एक परंपरा के माने जाते हैं, उनके समय के कर्तव्य अलग-अलग। तब आज का कर्तव्य अलग हो, इसमें अटपटेपन की क्या बात? समय बहुत बदल गया, समय के लिहाज से दुनिया बदल गयी, राज्यसंस्था ने रूप बदले, तो क्या धर्म-संस्थाएँ रूप न बदलेंगी? कर्तव्यों के बदलने से धर्म बदल जाते हैं। समय-समय पर नये-नये धर्म खड़े होते रहते हैं। दस अवतारों को ले लीजिये, चौबीस तीर्थंकरों को ले लीजिये, चौबीस बुद्धों को ले लीजिये, चाहे अनेक पैगंबरों को ले लीजिये, सबने नयी

किताबे दीं। एक की किताब दूसरेसे मेल नहीं खाती। मूल में मिलने पर इतनी अलग हैं, जितनी सोने की आरसी सोने के कगन से। कगन चाहनेवाली नवेली गुस्से मे आकर आरसी को फेंक सकती है, फिर वह रहा करे सोने की।

धर्म का नया-पुरानापन

सोना पुराना रहकर सोना बना रहता है, पर सोने के जेवर कुछ बरसो मे पुराने कहलाने लगते हैं। बिना झिझके औरत-मर्द पुराने गहनो को गॅवारू कह बैठते हैं, उनकी नजर सोने पर जाती ही नहीं। पुराने धर्म नये धर्म पर अगर इसी तरह की टीका कर बैठें, तो अचरज नहीं, बिगड़ना चाहिए नहीं। वह जो कुछ कहते हैं, झूठ नहीं कहते। भला, आज के युग मे पुराने रस्मो-रिवाज लेकर कैसे रहा जा सकता है? जो रस्म-रिवाज किसी समय पूरे, सच्चे और जरूरी थे, वे आज हर तरह नकली और गैर-जरूरी समझे जायँगे। वह होंगे भी वैसे।

सभी दार्शनिक सहमत हैं कि सत्य की खोज जारी है। सत्य अभी किसीके हाथ लगा नहीं। सभी दार्शनिको का यह भी दावा है कि सत्य उनके हाथ लगा। वे जो कह रहे हैं, सत्य कह रहे हैं। यह सुनने-समझने मे विपरीत जॅचता है, पर ध्यान देने से इसमे विपरीतता नहीं मिलेगी। बिजली के दो सिद्धान्तों को लीजिये। एक लहर-सिद्धान्त दूसरा पोटली-सिद्धान्त। वे यानी वेव और क्वेन्टम सिद्धान्त। क्वेन्टम सिद्धान्त नया है, वह वेव सिद्धान्त की खिल्ली उडा सकता है, पर कहीं-कहीं वह खुद ऐसी अवस्था मे आ जाता है, जहाँ उसे मालूम होने लगता है कि वेव सिद्धान्त उसकी खिल्ली उड़ा रहा है। क्वेन्टम सिद्धान्त से पहले वेव सिद्धान्त अकाट्य था। ऐसा मालूम होता था, माना

सचाई हाथ आ गयी, बिजली के बारे में हमने सब कुछ जान लिया। एटम की जानकारी का हाल कुछ इसी तरह का है। कणाद से लेकर आज तक 'अणु' के बारे मे क्या-क्या कुछ नहीं कहा जा चुका। जो कहा गया है, वह एक-दूसरे से बिलकुल उलटा है। हरएक अपने समय मे सत्य था। असल मे सत्य है अणु का अस्तित्व। रहा अणु का बाहरी धर्म, उसकी खोज जारी रहेगी, वह बदलती रहेगी। अणु का नया-पुराना कुछ नहीं। अणु के रूप का पुराना-नयापन बना रहेगा। अणु अदृश्य था, अदृश्य है। उसके कार्य से उसका होना माना जाता है। कार्य के आधार पर उसके बारे मे अनुमान किया जाता है। अणु के कई टुकड़े हो गये हैं और उनकी खोज जारी है। इन कुछ दिनों मे, विज्ञानियों को संदेह होने लगा है कि कहीं ये टुकड़े अणु न निकल पड़े, उसी तरह के सौर-जगत् न बन बैठे, जिस तरह अणु बन बैठा है।

विज्ञान से दर्शन पिछड़ गया है

कार्य से जाने गये अणु का यह हाल है, तब आत्मा का क्या हाल होगा? आत्मा की सिद्धि अभी कार्य के बल पर नहीं हो पायी। अभी आत्मा दर्शन-शास्त्र का विषय है, विज्ञान-शास्त्र का विषय नहीं। धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है, तब आत्मा के कर्तव्य अटल कैसे ठहर सकते हैं? दूसरे शब्दों मे यह बात यों कही जा सकती है, तब धर्म एकरूप कैसे रह सकता है? वेद के समय हमने जो जाना, वह ऐसा था जो सुनकर जाना। वह कितना ही सही क्यो न हो, आज सचाई की कसौटी पर पूरा सही नहीं उतर सकता। उसकी सचाई मे कमी आ गयी है। वह यह कि जिसने वह बात सुनी, वह हमारे सामने नहीं। उस सचाई पर

जितनी टीका हुई, वह ऐसे लोगों की कम हैं, जिन्हें उसकी पूरी-पूरी जानकारी थी। उन्हीं लोगों की ज्यादा है, जो कोरे पंडित थे। हर टीकाकार ने कोशिश जरूर की कि वह अपनी टीका को ऐसा कर दे कि वह उसके अपने समय के ज्ञान से पूरी तरह मेल खा जाय। पर आज विज्ञान कहीं-से-कहीं पहुँच गया। दर्शन ने भी उन्नति की, पर इतनी नहीं, जितनी कि विज्ञान ने। विज्ञान आज दर्शन को बहुत पीछे छोड़ चुका है। दर्शन के पास विज्ञान के लिए अब कुछ नहीं रह गया। जो उसे लेना था, वह ले चुका। हो सकता है, कभी विज्ञान अपना दर्शन तैयार करे। हो सकता है, विज्ञान बढ़ते-बढ़ते अनजाने दर्शन में प्रवेश कर जाय। तब दर्शन और विज्ञान इतने एक हो जायँगे कि एक-दूसरे से अलग दिखाई न देंगे। यह सब आज के आदमी की विशुद्ध इच्छाएँ हैं। हम इन्हें यहीं छोड़ते हैं।

आत्मा के बल पर खड़े धर्म का कार्य

हमें देखना यह है कि हमने जिस धर्म को आत्मा के बल पर खड़ा किया था, वह अपना काम कहाँ तक ठीक कर रहा है। अगर ठीक नहीं कर रहा, तो क्यों ठीक नहीं कर रहा? जब हमें "क्यों" का पता लग जायगा, तब जरूर धर्म के सब नियमों को विज्ञान की खोज की आज तक की पहुँच के आधार पर बदल देना पड़ेगा। सत्य-अहिंसा को लेकर हमने जो कर्तव्य अपने लिए निर्माण किये थे, वे आज एकदम बदल जायँगे। नियमों के बदलने से धर्म को धक्का नहीं लगेगा। हमारी नीयत धर्म की जड खोदना नहीं, धर्म की जड़ के नीचे जो ऐसी चीज आ गयी है, जो उसको गहराई तक नहीं जाने देती, जिसकी वजह से धर्म का पेड़ न बढ रहा है, न फल-फूल रहा है, इस रोक को

वहाँ से हटा देना है। हमारे सत्य और हमारी अहिंसा ने जो रूप ले रखा था, वह आज काम का सिद्ध नहीं हो रहा। फिर उसको क्यों न बदला जाय ?

धर्म के पुरानेपन की पाबन्दियों का भान

धर्म के पुरानेपन को नया रूप देने से धर्म में बाधा क्यों आने लगी ? बच्चा जवान होने पर मूँछें-दाढ़ी निकाल बैठता है। इससे रूप बदलता है, बच्चे में दृढ़ता आती है, पहले से ज्यादा काम कर सकता है—भले ही किसी-किसी जवान को यह मालूम हो कि मैं किस आफत मे फँस गया, वह बचपन की स्वच्छन्द और बेफिक्री की प्रवृत्तियों को सोचकर उस पराधीनता पर नजर न डाल पायेगा, जो उसके सिर पर सवार थी। धर्म का आज का रूप जब बदलेगा, तब वह कुछ ऐसा होगा, जिसे कोई पुराने धर्म का मोही ना-समझ यह सोचकर दुःख मानने लगे कि हाय, हाय, धर्म के वे पुराने रिवाज आज हम सब से छुटे जा रहे हैं, जिनमे हमें कितनी आजादी थी, हम कितने सुख से जीवन बिताते थे। वह सोच ही न पायेगा कि जिस धर्म के वह गीत गा रहा है, उसमे कितनी बुरी पाबन्दियाँ थीं। ताँगे का घोड़ा अगर जंगल में छोड़ दिया जाय, तो जरूर दो-तीन दिन छोड़ने-वाले को गालियाँ ही सुनायेगा। जब उसे वक्त पर रातिब-दाना मिलने की याद आयेगी, तो अजब नहीं वह रो उठे ! जंगल में पानी न पाकर वह एक बार गश खाकर गिर सकता है। पर जैसे ही उसे आजादी की हवा लगेगी, वह उस आदमी के गीत गाने लगेगा, जिसने उसे जंगल में छोड़ा था। आज के धर्म का रूप धर्मवालो पर इसी तरह का रंग लायेगा। उन्हें ऐसा मालूम

होगा, मानो वे स्वर्ग से नरक मे ढकेले जा रहे हो। अगर मेरा अनुमान झूठा नहीं है, तो स्वर्ग के देवता आदमी का जन्म लेने के लिए जब भू-लोक पर भेजे जाते होंगे, तो जरूर दु ख मानते होगे। क्या अजब, आदमी के बच्चे जब पैदा होते हैं, तो शायद इसी वजह से रोते हों कि उनसे उनका स्वर्ग छिन गया। पुराना धर्म कहता यही है कि स्वर्ग के दु.खो से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य-जन्म जरूरी है। स्वर्ग दर्शनकारों और शास्त्रकारो की दृष्टि में भले ही ऊँचा हो, पर ज्ञानियो की दृष्टि मे उन्नति के सोपान का मनुष्य की अपेक्षा नीचे का डडा है। नीचे का डंडा छोड़कर ही सोपान पर चढा जाता है।

नया धर्म पुराने धर्म के साथ एकमेक होने पर भी न्यारा

नया धर्म डरावनी चीज नहीं हो सकता। नया चोला क्या डरावना होता है? नये धर्म को स्वीकार करते डरना स्वाभाविक है। मौत से जहाँ बहुत लोग डरते हैं, वहाँ ऐसे भी होते हैं जो मौत से आगे बढ़कर भेंटते हैं। नया धर्म, पुराने धर्म से हर तरह अच्छा होगा। क्या नयी जवानी पुराने बचपन से कभी बुरी सुनी गयी है? नया धर्म कहने के लिए नया होगा, नहीं तो हर तरह वही होगा, जो पुराना धर्म है। आदमी का नया चोला कहने के लिए नया है, नहीं तो हर तरह वैसा ही है, जैसा पहला चोला।

नया धर्म हमारी विचार-धारा को बदल देता है। उसके आधार पर हम अपने रस्म-रिवाज बदल डालते हैं। मान लीजिये, पुराने धर्म के अनुसार हम इसको सत्य के ज्यादा निकट समझते हैं कि एक आदमी अपनी बिरादरी में विवाह करे। विचार-धारा बदल जाने पर धर्म किसीका विवाह तो रोकेगा

नहीं, न विरादरी के विवाह को पाप समझेगा। वह सिर्फ यह कह देगा कि यह भी सत्य के निकट है कि आदमी अपना विवाह किसी जाति में कर ले, क्योंकि यह सचाई भली-भाँति जान ली गयी है कि आदमी-आदमी एक जात होते हैं। नया धर्म अपनी इस विचार-धारा को लेकर पुराने शास्त्रों को आमूल बदल डालेगा, फिर भी धर्म ज्यों का त्यो बना रहेगा। जैसे कहीं भी विवाह कर लेने से विवाह अटल रहता है, वैसे ही लोक का कोई रूप मान लेने से लोक अटल रहेगा। मोक्ष का कोई रूप मान लेने से मोक्ष को धक्का नहीं पहुँचेगा। द्रव्यो की गिनती कम-ज्यादा हो जाने से द्रव्यों को कोई बाधा नहीं आयेगी। ज्योतिषशास्त्र ने जब दुनिया को चपटा माना, तव दिन-रात रहे, ग्रहण पड़े, दुनिया के सब काम चले। जब उसने पृथ्वी को गोल मानकर सूरज को उसके चारो तरफ घुमाया, तब भी दिन-रात ज्यो-के-त्यो बने रहे, ग्रहण पड़ते रहे। आज सूरज के चारो तरफ जमीन गेंद की तरह घूम रही है। तब भी सब वे ही व्यवहार चल रहे है, जो हमेशा से चलते आये हैं। मतलब यह कि नया धर्म पुराने धर्म से एकमेक होते भी अपने ढंग का न्यारा होता है। उसे अपना लेने मे झिझकना बेकार है। ◉

अभी सब कुछ सोचना बाकी : २ :

क्या सब कुछ सोचा जा चुका ?

'क्या सब कुछ सोचा जा चुका ?' ऐसा सवाल उठना नहीं चाहिए, क्योंकि हम खुद सोचते हैं। कोई यह सवाल उठा सकता है कि 'हम वही तो सोचते हैं, जो पहले सोचा जा चुका है', इसलिए साबित होता है कि अब सोचने के लिए कुछ नहीं रहा। हमारे बाप-दादा सब कुछ सोच चुके। एक मशीन जब अपना काम पूरा कर चुकती है और उसके पास करने के लिए कुछ नहीं रह जाता, तब मशीन का मालिक मशीन बन्द कर देता है। बंद न करने पर भी वह अनन्त काल तक घूमती नहीं रह सकती। उसकी जान है भाप। जब भाप खतम हो जायगी, तब मशीन अपने आप बंद हो जायगी। यह उदाहरण देकर हम यह कहना चाहते हैं कि अगर विचारने के लिए कुछ न रहा होता, सोचने के लिए कुछ न बचा होता, तब आदमी के सोचने की ताकत नष्ट हो गयी होती या नाम के लिए रह गयी होती। योग-सूत्र में जहाँ चित्तवृत्ति-निरोध का जिक्र आया है, वहाँ सूत्रकार का मतलब यह नहीं है कि सोचना बंद कर दिया जाय। वह यह कहना चाहता है कि मन को मन की मर्जी पर छोडकर उसे इधर-उधर न घूमने दो, उस पर काबू करो, उसे उस रास्ते चलने के लिए मजबूर करो, जिस रास्ते तुम उसे चलाना चाहते हो। योग का सार विचारों को नष्ट करना नहीं, चित्तवृत्ति को वश में करना है, उससे काम लेना है। आज का विज्ञान यह बताता है कि जैसे-जैसे कोई अंग बेकार होता है, वैसे-वैसे वह

छोटा होता जाता है, नाम के लिए रह जाता है। आदमी की पूँछ घिसते-घिसते इतनी छोटी हो गयी है कि टटोलने पर ही उसकी हड्डी का पता लग सकता है, देखने के लिए वह आदमी के पास नहीं।

सर्वज्ञता सीमित विचारों में ही सम्भव

"सब कुछ सोचा जा चुका है" यह कहना एक ओर! यह भी नहीं कहा जा सकता कि बहुत कुछ सोचा जा चुका। 'सोच' को अगर समुद्र मान लिया जाय तो अभी उसकी एक बूँद नहीं सोची गयी, बहुत कुछ और सब कुछ की तो बात क्या? गूलर का भिनगा सारे गूलर का हाल जानकर अपने को 'सर्वज्ञ' कह सकता है। हम अगर उसके अंदर होते, तो हम जरूर अपने को सर्वज्ञ कहते, हमारे साथी भी खुशी से हमें सर्वज्ञ कहते। फिर भी न हम झूठे सर्वज्ञ होते, न वे झूठे सर्वज्ञ-भक्त। लेकिन गूलर फूट जाने के बाद भी हम अगर अपने को सर्वज्ञ मानते रहते, तो हम झूठे सर्वज्ञ होते और हमारे सब भक्त झूठे सर्वज्ञ-भक्त! सीमित विचारों की दुनिया में निवास करते हुए हमें हक है कि हम अपने को सर्वज्ञ कहें, हमसे कम जानकार हमे सर्वज्ञ कहकर पुकारें। लेकिन जैसे ही हमारे सीमित विचारों की दुनिया टूटे, वैसे ही हम अपने को सर्वज्ञ कहना छोड़ दें। अपने भक्तों से कह दें कि वह अब हमें सर्वज्ञ न समझें।

सर्वज्ञ बनने की इच्छा पुरानी है

सर्वज्ञ बनने की इच्छा पुरानी है। पहले समय के ऋषियों ने उस इच्छा की पूर्ति यह कहकर कर ली थी कि "जो एक को जानता है, वह सबको जानता है और जो सबको जानता है, वह एक को जानता है।" एक से था उनका मतलब, आत्मा;

सबसे था उनका मतलब, लोकालोक या तीनों लोक। इस मामले में सब ऋषि सहमत थे। इसी बात को कई तरह कहकर सर्वज्ञपने की तसल्ली की जाती है। किसीने कहा : "जो पिंड मे है, वही ब्रह्माड में है। जो पिंड को जानता है, वही ब्रह्माड को जानता है।" किसीने कह दिया "जो एक द्रव्य को जानता है, वह उसके सब पर्यायो को जानता है।" बस, इन छोटे-छोटे सूत्रों के आधार पर एक अलग सर्वज्ञ की कल्पना कर ली गयी। वह बहुत दिनों चलती रही। आज के युग मे उसकी पोल खुल गयी। सबने सूत्र का असली मतलब जान लिया। आज के युग मे एटम की नयी जानकारी के वाद से इस तरह का विचार फैल चुका है कि जो एटम को ठीक-ठीक समझ लेगा वह सारे जगत् को समझ लेगा। एटम छोटे रूप मे एक सौर जगत् है। हो सकता है, सारा-का-सारा सौर जगत् किसी दूसरे सौर जगत् का एक हिस्सा हो। पुराने ऋषियों की तरह आज भी यह वात कही जा सकती है कि वह आदमी सर्वज्ञ है, जो अणु की रचना को ठीक-ठीक समझता है, क्योंकि सारा जगत् एक बहुत वड़ा अणु ही तो है। दोनो मे इतना अतर है—एक बहुत वडा है, एक बहुत छोटा। एक वडा होने के कारण हमारी आँखो के सामने नहीं आ सकता, दूसरा छोटा होने के कारण हमारी निगाह से परे है, हमारे यत्रो की निगाह से परे है।

कोई युक्ति 'सर्वज्ञ' सिद्ध करने मे सहायक नहीं

१. कार्य से कारण का अनुमान किया जाता है। कार्य की अनुपस्थिति मे कारण की अनुपस्थिति नहीं मानी जा सकती। सर्वज्ञ का कोई कार्य हमारी आँखो के सामने नहीं, इसलिए 'सर्वज्ञ नहीं माना जा सकता।

२. पेड़ो पर फूल लगते हैं, इसलिए गूलर मे फूल लगने चाहिए, इस न्याय से एक आदमी गूलर के फूल की तलाश मे अपनी जिंदगी बिता सकता है; पर उसके हाथ कुछ नहीं आ सकता। एक आदमी कम जानकार है. दूसरा ज्यादा जानकार, इसलिए एक आदमी ऐसा होना चाहिए, जो सबका जानकार यानी सर्वज्ञ हो। इस न्याय से एक आदमी सर्वज्ञ बनने की खातिर अपनी उमर बिता सकता है, अपने तन पर बड़े-बड़े कष्ट झेल सकता है, अपने मन को मार सकता है, अपनी बुद्धि का दुरुपयोग कर सकता है, पर सर्वज्ञ नहीं बन सकता।

३. एक जरूरत सर्वज्ञ की यों भी मानी गयी है कि जितनी दुनिया मे चीजें हैं, उनकी जानकारी अगर किसीको न होगी, तो वे चीजे 'ज्ञेय' नाम कैसे पा सकेंगी ? हर ज्ञेय का कोई 'ज्ञाता' होना चाहिए। उनका ज्ञाता ही सर्वज्ञ है। इन दलीलो मे जान नहीं। अगर यह बात मान ली जाय कि हर ज्ञेय का कोई ज्ञाता होना चाहिए, तो भाषा-सर्वज्ञ की कहाँ जरूरत पड़ती है ? किसी चीज का मैं ज्ञाता, किसीके तुम, किसी चीज का वह—तीनो मे सर्वज्ञ कोई नहीं। सर्वज्ञ के बिना न ज्ञेय पर कोई आफत आयी, न ज्ञान पर, न ज्ञाता पर।

४. दुनिया में दो तरह के धर्म हैं। एक वे, जो यह मानते हैं कि हमेशा अवतार, तीर्थंकर, पैगम्बर होते रहते हैं और आगे भी होते रहेंगे। दूसरे वे, जो यह मानते हैं कि पैगम्बर आये तो, लेकिन आगे नहीं आयेंगे। जो आगे न होने की बात कहते हैं, वे खुदा को छोड़ किसी दूसरे को सर्वज्ञ नहीं मानते। जो आगे होने की बात मानते हैं, वे ही सर्वज्ञ मे विश्वास करते हैं। अब अगर सोचने के लिए कुछ रह ही नहीं गया, तो आगे सर्वज्ञ होकर क्या होगा ? कोई नयी बात बताकर ही दुनिया मे अपनी

जगह बनाता है। जितने धर्म-प्रवर्तक हुए हैं, सबने दुनिया को कुछ नयी देन दी। जब देने के लिए कुछ रह ही न जायगा, तब सर्वज्ञों के जन्म लेने की कहाँ जरूरत? या जो जन्म ले चुके, उन्हें सर्वज्ञ बनने की कहाँ जरूरत थी?

५. "सब कुछ सोचा जा चुका" यह बात किसी तरह नहीं बनती। इसके मान लेने से दुनिया में बड़ी धाँधली मच जायगी, अव्यवस्था हो जायगी, आगे की उन्नति रुक जायगी और न जाने क्या-क्या तूफान खड़े हो जायँगे। नये महापुरुषों की पैदाइश बन्द हो जायगी। नयी खोज की कोई जरूरत न रह जायगी। हम अच्छी तरह जानते हैं, दुनिया के आदमी दुनिया की ऐसी हालत कभी न होने देंगे। सोचनेवाले नयी-नयी बातें नयी-नयी तरह से सोचते ही रहेंगे। सोचने की प्यास मामूली प्यास नहीं, वह कभी किसी तरह न रुक सकेगी।

जानकारी बढ़ने पर सर्वज्ञता मिटती जाती है

"क्या सोचना बाकी है?" अगर यह सवाल विद्वानों के पास भेज दिया जाय, तो इतने जवाब आ सकते हैं, जिनकी एक बड़ी किताब तैयार हो सकती है। अकेले एक शहर की इतनी मोटी किताब होगी कि उसे रखने के लिए जगह न मिले। सोचने की बात छोड़िये, आविष्कारों के बारे में आये दिन सवाल निकलते रहते हैं कि किस-किस आविष्कार की जरूरत है? आदमी की इच्छाएँ इतनी जबरदस्त हैं कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। वह ऐसी-ऐसी इच्छाएँ कर बैठता है, जो सुनने में असम्भव-सी जँचती हैं, शुरू-शुरू में असम्भव मान भी ली जाती हैं। पर देर-सबेर उनमें से कोई-न-कोई पूरी हो ही जाती है। आदमी ने जब उड़ने की बात सोची, तो उसके

अपने सिद्धान्त ही उसके आड़े आ गये। महात्मा नवतन यानी न्यूटन का सिद्धान्त साफ कह बैठा, आदमी किसी तरह नहीं उड़ सकता। पर आज वह इस तरह उड़ रहा है कि उड़नेवाले पक्षी उससे डाह कर सकते हैं। आदमी ने सोचा, शीशे को मुड़ना चाहिए, उसमें लचक होनी चाहिए। आज लचकदार शीशा बाजार में मौजूद है। आदमी ने चाहा कि आग ठंढी होनी चाहिए, तो उसके लिए कोशिश हो रही है। जल्दी ही ठंढी आग बाजारू चीज बन जायगी। जब आविष्कारों का यह हाल है, तब दार्शनिक विचारों का क्या हाल होगा, इसका अन्दाजा आप लगा सकते हैं। असल में होता यह है कि आदमी का ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे अजानकारी का क्षेत्र जानकारी के क्षेत्र से कई गुना बड़ा हो जाता है। आप किसी मूरख या मामूली आदमी से यह सवाल कीजिये कि भाई, तुम्हें कुछ पूछना या जानना है? वह एकदम जवाब देगा कि मुझे कुछ नहीं पूछना, कुछ नहीं जानना। जिसका अर्थ हुआ "मैं सर्वज्ञ हूँ।" उसी आदमी को कुछ दिनों के लिए पाठशाला मे छोड़ दिया जाय और फिर वही सवाल पूछा जाय, तो वह जवाब देगा, "हॉ, उसे दो-चार बाते जाननी हैं।" थोड़ा और पढ़ जाने पर उसके सवालों की तादाद पहले से कई गुना बढ़ जायगी। जैसे गूलर में रहकर जो अपने को सर्वज्ञ समझता था उसे जानने की झड़ी लगा दी, वैसे ही सब धर्मों के सर्वज्ञ अगर आज की खुली दुनिया में आ जायॅ, तो सवालो की झड़ी लगा दे। वे ऐसे सवाल पूछें, जिनके जवाब उस समय जिस सीमित संसार मे वे फॅसे हुए थे, वह सीमित संसार अब उन्हें देखने को भी न मिलेगा। उन दिनों के सर्वज्ञ के लिए आज का मामूली खिलौना जानकारी का विषय बन जायगा। उनका वह

हाल हो जायगा, जो शहर मे आकर किसी गॉव के बच्चे का हो जाता है।

तब के सर्वज्ञ अब अल्पज्ञ

"क्या जानना बाकी है" इसका जवाब है, "हमने अभी जाना ही क्या है?" जो कुछ अब तक जाना है, वह बहुत थोड़ा ही नहीं, उसकी जानकारी तक अभी अधूरी है। उस सबको ठीक-ठीक जानना है। विज्ञान के क्षेत्र मे भी यही हाल है। अब तक विज्ञानी जो बात जाने हुए थे, उसकी जानकारी आज बिलकुल अधूरी साबित हो रही है। उन्हे अपनी जानकारी मे बड़े-बड़े बदलाव करने पड रहे हैं। इतना ही नहीं, जिन पडितो ने उन्हें वह जानकारी दी थी, वह अपने समय के इतने बड़े पडित माने जाते थे कि आज कोई इतना पडित नहीं माना जाता। वे चाहे सर्वज्ञ न रहे हो, पर अपने विषय के सर्वज्ञ तो थे ही। आज वे सर्वज्ञ अल्पज्ञ साबित हो रहे हैं।

बस, सोचने के लिए इतना बाकी है कि उसकी सूची बना कर नहीं दी जा सकती। हमारा यह हाल उस वक्त है, जब हम खासी सीमित दुनिया मे रह रहे हैं। जब इस दुनिया की सीमा टूटेगी, तब न जाने हम कितने बड़े अज्ञानी साबित होगे।

अभी बहुत कम सोचा गया

"क्या सोचना बाकी है?" इसका जवाब यह साबित करता है कि हमने अब तक जो कुछ सोचा है वह कुछ नहीं, उसमे क्रम भी कम है। उसमे तर-तमता इतनी नहीं है जितनी होनी चाहिए। हॉ, इसमे शक नहीं, अगर हमारे पैरो के नीचे से हमारा

सोचा हुआ खिसक जाय, तो हमारे पास खड़े होने के लिए कोई आधार न रह जायगा। बीज से निकला हुआ कुल्ला कितना ही मुलायम और छोटा क्यो न हो, वह बड़े-से-बड़े पेड़ की बुनियाद होता है। अगर बीज को यह कहने का हक है कि मुझमे सारा पेड़ मौजूद है, तो हमारे ऋषियो को भी यह कहने का हक है कि उनमे सारा ज्ञान मौजूद है। पुराने ग्रंथ, वेद, जेदावेस्ता आदि यह कहने के हकदार हैं कि बीज रूप से वह सब उनमे मौजूद है, जो आज तक सोचा गया है। इस बात की आज हमें कितनी कद्र करनी चाहिए, उसको कितना महत्त्व देना चाहिए, यह हमारे सोचने की बात है। प्यासा मरता आदमी घूंट पानी पिलानेवाले की जितनी तारीफ करे, थोड़ी। वह उसे जान डालनेवाला भगवान् कह सकता है, पर कहीं पिलानेवाला अपने को भगवान् समझ बैठे, तो समझना चाहिए कि वह कुछ भी नहीं, बल्कि जानकारी के लिहाज से महामूर्ख है। अपने अंदर भगवान समझने की बात सही होते हुए भी मामूली नही, हरएक के काम की नहीं। जिनके काम की है, वे इसकी शेखी नहीं बघारते। वे अपने अंदर भगवान् मानते हुए भी यह नहीं चाहते कि कोई उनके पाॅव छुए, उन्हें सर्वज्ञ या भगवान् माने। वे उल्टे लोगों के पाँव छूते फिरते हैं, पाॅव दबाते फिरते हैं, गिरे हुओ को उठाने की खातिर, न जाने किन-किन आफतों को अपने सर ढो लेते हैं। सिर चढ़ने को बजाय लोगो को सिर पर चढ़ाने का काम करते रहते है। वे खूब समझते हैं, हममे भगवान् है जरूर, पर उसे अभी माॅझकर साफ करना है। उसे माॅझकर साफ करने का मतलब है, अपने को माॅझना। वे यह भी खूब समझते हैं कि अभी सोचने के लिए इतना बाकी है, जिसका कोई हिसाब नहीं।

सब कुछ सोचना बाकी है

दुनिया ने अब तक अनगिनत महापुरुष पैदा किये हैं। हर महापुरुष अपने समय में, अपने देश में, अपने समाज में बड़े-से बड़ा समझा गया। हर महापुरुष ने कोशिश की कि दुनिया यह मान ले कि मनुष्य-समाज, सारा-का-सारा एक जाति है। पर क्या आज तक इस ओर दुनिया एक कदम भी आगे बढ़ पायी ? यही बात क्या कम सोचने की है कि महापुरुषों की मेहनत अब तक क्यों बेकार गयी ? इस अकेले एक सवाल का जवाब आज की दुनिया ठीक-ठीक सोच ले, तो समझना चाहिए कि अब तक जो कुछ सोचा गया, वह सब काम में आ सकेगा। हम यह कहने को तैयार हैं कि जिस दिन तक का दुनिया का इतिहास मिलता है, उस दिन से आज तक मामूली सवाल और कितने ही क्यों न सोचे गये हों, उनका हल भी निकल आया हो, पर महत्त्व का एक सवाल यह कि "महापुरुषों की मेहनत बेकार क्यों जाती है ?" हर महापुरुष सोचता आया और न जाने कब तक सोचता रहेगा, न जाने कब उसका ठीक-ठीक जवाब मिलेगा।

जब महत्त्व की एक मामूली बात आज तक ठीक-ठीक नहीं सोची जा सकी, तब यह समझ बैठना कि सब कुछ सोचा जा चुका, कितनी भारी भूल समझी जायगी। अब यह सवाल कि 'क्या सोचने को बाकी है' इतना मामूली रह जाता है कि इसका जवाब थोड़ा समझदार आदमी भी आसानी से दे सकता है और वह यह कि अभी सब कुछ सोचने के लिए बाकी है। ●

सत्य का पहला रूप   : ३ :

सत्य की मूरत

सत्य अगर परमेश्वर है, तो ज्ञानियो और महापंडितों के लिए भले ही वह अमूर्तिक और निराकार हो, साधारण लोगों के लिए तो हर तरह मूर्तिक और साकार है। हमारी तरह सोचकर शायद किसीको सूझा होगा और उसने ईश्वर का मंदिर बना कर, उसमे ईश्वर की मूरत बिठाकर समझ लिया कि सत्य को लोगों के सामने पेश कर दिया, सत्य का स्वरूप समझा दिया। आज के सत्य-भक्त भी इसी धुन मे ऐसा कर बैठते हैं, जैसा पहले कभी कोई नहीं कर गया।

ईश्वर की मूरत गढ़ देना ठीक है या नहीं, इस बहस मे प्रवेश करने की जरूरत नहीं। ईश्वर की मूरत गढ़नेवाला कभी यह नहीं कहता कि यही ईश्वर है। ऐसा वह कह भी कैसे सकता है? मूरत गढ़नेवाले से अगर ईश्वर का स्वरूप पूछें, तो वह यह कभी न कहेगा कि ईश्वर मूर्तिक और साकार है। कहेगा, वह अमूर्तिक और निराकार है। मूरत तो ईश्वर का भजन करने के लिए अवलम्ब-मात्र है।

सत्य : मूर्तिक और साकार

'सत्य' सचमुच मूर्तिक और साकार है, ईश्वर भी मूर्तिक और साकार है। ऐसी बात न होती, तो क्या पशुओं से मिलता-जुलता मनुष्य-समाज आज इस अवस्था को पहुँचा होता, जिस अवस्था में वह है? आज भी बालक के लिए सत्य

और ईश्वर, दोनों मूर्तिक और साकार हैं। अगर यह सही न हो, तो बालक ऐसे ठूँठ रह जायँ, जैसे पशु-पक्षियों के बच्चे। सत्य या ईश्वर का अगर रूप न होता, वह इंद्रियों के परे की चीज होती, तो क्या कभी उसकी कल्पना हो सकती थी? कोई कल्पना ऐसी नहीं होती, जिसके सामने रूप न हो। कल्पना अपने आपमें भले निराकार हो, पर निराकार तक उसकी पहुँच नहीं। कोई कल्पना ऐसी पेश नहीं की जा सकती, जो रूप न दे सके। आदमी का मन शब्दों में नहीं सोचता। शब्द आदमी के लिए अनादि नहीं, भले ही वह अपने आप में अनादि रहा करें। आदमी ने अपने शब्द गढ़े, उनका आदि है, वे मूर्तिक और साकार हैं। वे अमूर्तिक और निराकार रहा करें, उनकी अमूर्तिकता और निराकारता से उस बाल-समाज को कोई मतलब नहीं, जिसने शुरू में साकार सत्य को अपनी आँखों देखा। मनुष्य का वह साकार सत्य था—आसमान, सूरज, तारे, नक्षत्र, ग्रह, बादल, बिजली, जमीन, पानी, हवा, आग आदि। इन सबको वह आँखों से देखता था, कानों से सुनता था, सूँघता था, चखता था, छू लेता था—अपनी इंद्रियों की मदद से। इन साकार सत्यों की हाजिरी से वह जिस नतीजे पर पहुँचा, वह सब सत्य था। वह मूर्तिक और साकार था। इस मूर्तिक और साकार के बिना वह एक कदम आगे नहीं रख सकता था। सत्य का यही पहला रूप आज की हमारी उन सब खोजों में छिपा है, जो हमने अब तक सत्य के बारे में की हैं। प्रकृति के इन दृश्यों की महत्ता "आदमी के मन पर आज के दिन तक ऐसी बैठी हुई है, जैसे उस दिन थी, जिस दिन उसने पहले-पहल उन सब के बारे में कुछ सोचा था। समय-समय पर कवि प्रकृति का जिक्र करते वक्त उस महत्ता में जान डालते रहे, जो बेपर-

वाही से कभी-कभी सूख जाती थी। आज के दिन तक वही हो रहा है। न जाने कब-तक सत्य का यह पहला रूप हम सबकी आँखों मे खुबा रहेगा, हमारे दिल में जमा रहेगा, हमारे दिमागों मे घूमता रहेगा, हमारी आत्मा के साथ एकमेक बना रहेगा।

व्यावहारिक सत्य यानी सचाई

एक 'सत्य' वह, जो 'ईश्वर' है, जिसकी हमने ऊपर चर्चा की। दूसरा सत्य वह, जो व्यवहार की चीज है, जिसे हम 'सचाई' नाम से पुकारते है। इसका सबसे ज्यादा व्यवहार बोलने मे समझा जाता है। इस व्यवहारी सच को आदमी जन्म से लेकर पैदा होता है। दुनिया की आदिम जातियाँ सुसंस्कृत आदमी से कहीं ज्यादा सच बोलती है। वैसे ही बालक आदमी से कहीं ज्यादा सच बोलता है। सच बोलना सत्य को समझने मे बड़ा सहायक होता है। ईश्वर नामवाला सत्य सच बोलनेवाले के हाथ ही लग सकता है। सच बोलनाभर काफी नहीं, कहने-सुनने के लिए काफी है। पूरा सच बोलना उस वक्त माना जाता है, जब सच बोलनेवाला सच ही सोचे, सच ही करे। केवल सच बोले, तब भी उसका और समाज का बहुत कुछ भला हो सकता है। समाज अपने बालकपन मे सच बोलता, सच सोचता और सच ही करता था। आज यही बात आदिम जातियो और आदमी के बच्चो मे मिलती है। बच्चा अगर कह दे कि उसने एक हाथी अपनी मुट्ठी मे दबा लिया, तब यह नहीं समझना चाहिए कि वह झूठ कहता है। तहकीकात करने पर पता चल सकता है कि बच्चा जो कुछ कह रहा है, सच कह रहा है। यह दूसरी बात है कि उसकी वह बात सपने की बात हो। अगर आदमी यही बात कहे और यह न बताये कि वह सपने की बात कह रहा है, तो वह झूठा

समझा जायगा। क्योंकि वह सच बोल रहा है, पर न सच सोच रहा है, न सच कर रहा है। इसी कसौटी पर हमारे आदि ग्रंथ कसे जाने चाहिए। उन्होंने प्रकृति को देखा, प्रकृति की क्रियाओं का हल सोचा, वह हल वही हो सकता था, जो वह अपनी आँखों खुद को, पशुओं को, पक्षियों को, कीड़े-मकोड़ों को करते देखते थे। न उनकी आँख गलत थी, न कल्पना गलत। कभी उन्होंने असत्य सोचने की सोची ही नहीं। आदिम-युग का आदमी अपने हाथों अपना चबूतरा बनाता था, पृथ्वी उसके लिए बड़े चबूतरे के सिवा और क्या थी? तब उसका बनानेवाला कोई होना चाहिए। आदिम-युग का आदमी अपनी छत जानवरों के चमड़े को तान कर बनाता था। आसमान एक वितान नहीं तो और क्या है? वितान है तो उसका ताननेवाला होना चाहिए, इसमें वह कहाँ असत्य सोचता है? कहाँ असत्य बोलता है? कहाँ असत्य व्यवहार करता है? वह पक्का सत्यवादी है, उसे ऋषि-महाऋषि क्यों न कहा जाय? तुम उसकी किताबों को आज के तर्क-शास्त्र पर क्यों कसते हो? उन्हें उस समय के तर्कशास्त्र पर कसो। वे सब तरह ठीक मिलेंगी।

शुरू का आदमी पैदाइशी सत्यवादी था

बस, सत्य का पहला रूप था—जैसा देखना, वैसा सोचना, वैसा ही बोलना, वैसा ही करना! सत्य मानना, सत्य जानना और सत्य करना, ये आज भी सफलता के तत्त्व माने गये हैं। ये ही तत्त्व समाज के बालकपन में तत्त्व माने जाते थे या नहीं, यह खोज का विषय है। इसे छोड़िये, वे अमल में जरूर थे। इनके बगैर जिस तरह आज सफलता नहीं मिलती, इसी तरह उन दिनों

भी न मिलती। जैसे व्याकरण की जानकारी भाषा बोलनेवाले के लिए जरूरी नहीं, वैसे ही तर्क और दर्शन-शास्त्र की जानकारी प्रकृति और ईश्वर के अध्ययन के लिए जरूरी नहीं। शुरू का आदमी पैदाइशी सत्यवादी था, तो पैदाइशी तार्किक और दार्शनिक भी था। ऐसा न होता, तो न उसे सफलता मिलती, न वह सत्य को समझ पाता और न हमारे लिए ऐसे ग्रंथ छोड़ गया होता, जिनकी तारीफ करते-करते हम कभी नहीं अघाते।

पुरानी चीजों की मोहब्बत

सत्य का पहला रूप किन्हीं लोगो की नजर में आज कितना ही भोडा क्यों न लगता हो, पुरानी किताबो के विचार कितने ही बेतुके क्यों न कहे जायँ, पर उनसे लोगों का आकर्पण कम नहीं किया जा सकता। पुरानी चीजो से मोहब्बत होना स्वाभाविक है। छब्बीस बरस के बदशकल जवान के मर जाने पर माँ-बाप जितना दुःख मानेंगे, उतना एक दिन के खूबसूरत बच्चे के मर जाने पर नहीं। छब्बीस बरस तक उस भोडी शकल पर जो मेहनत की गयी है, वह उसको बड़े काम की चीज बना देती है। चीज की उपयोगिता और हमारी मेहनत दोनों मिलकर मोहब्बत पैदा कर देती हैं। एक दिन के बच्चे की न कुछ उपयोगिता है, न उस पर हमारी कोई मेहनत, फिर उसके लिए हमारा खिंचाव क्यों ज्यादा हो ? ठीक यही हाल सत्य के पुराने और भोंडे रूप का है। उस पर हमने बड़ी मेहनत की है, उसे हमने बड़े काम का बना दिया है। रोज के कामो मे हम उसका उपयोग करते हैं। हमारा खिंचाव उस तरफ होगा ही।

सत्य का पहला रूप आज काम का नहीं

सत्य का पहला रूप कैसा भी क्यो न रहा हो और वह

खिचाव तथा आदर की चीज भले ही बनी रहे, काम की चीज नहीं रह सकती। उससे आज काम नहीं लिया जा सकता। बुढ़िया की पूजा हो सकती है, उसको काम नहीं सौंपा जा सकता। घिसा-टूटा बरतन कुछ पैसे ला सकता है, पर हमारी दाल नहीं पका सकता।

०

सत्य का आज का रूप : ४ :

किसी बात के लिए किसीके सहारे की जरूरत नहीं

नीला आसमान कभी हमारे सिर पर तना शामियाना था, आज वह कुछ नहीं रह गया, हमारी नजर का धोखा है। घटाओं में चमकनेवाली बिजली, बादलों की गड़गड़ाहट और बादल खुद, क्या चीज है ? अब हम गड़गड़ाहट पैदा कर सकते हैं, बिजली चमका सकते हैं। अब यह जरूरत नहीं रह गयी कि हम इन बादलों के लिए एक ऐसा व्यक्ति ढूँढ़े, जो इनमे मूसल मार-मार कर गड़गड़ाहट पैदा करे, बिजली चमकाये, हमारे लिए मेह बरसाये। अब हम जान गये हैं, हमारी पृथ्वी गेंद की तरह सूरज के चारो तरफ घूम रही है। हमें जरूरत नहीं कि हम उसके सहारे की खोज करें, उसे कछुए की पीठ पर, साँप के फन पर या गाय के सींग पर बिठायें, जिससे वह लुढ़क कर हम सबको खतम न कर दे।

योग्यता वर्ण में नहीं

आज हम समझ गये हैं कि ब्रह्मा के मुँह से पैदा हुए आदमी ही विद्वान् नहीं बन सकते, कोई भी आदमी मेहनत करने पर विद्वान् बन सकता है। किसी बहादुर के लिए जरूरी नहीं कि वह उस कुल से पैदा हो, जो ब्रह्मा की छाती से पैदा हुआ माना जाता है। साहूकार बनने, साहूकारी सँभालने के लिए जरूरी नहीं कि कोई ब्रह्मा के पेट से जन्मा हो या उस कुल से, जो उससे जनमे माने जाते हैं। आज हम अपनी आँखों देख रहे

हैं कि जिन्हें ब्रह्मा की टाँगों से जन्मा माना जाता है, उस कुल के आदमी बड़े-से-बड़े विद्वान् बनने की काबलियत रखते हैं, बहादुरी में ऊँचे-से-ऊँचा पदक पा लेते हैं, बड़े-से-बड़ा फर्म सँभाल लेते हैं, यहाँ तक कि राज सँभालने का काम आ पड़े, तो उसे भी बड़ी खूबी से कर लेते हैं।

ज्ञान के रास्ते बहुत खुल गये

आज ऊँची-से-ऊँची बात सोचने के लिए इस बात की जरूरत नहीं कि कोई न दिखाई देनेवाली ताकत उसके कान में आकर कुछ कहे, तब ही वह ऊँची बात सोच सके। सत्य की बड़ी-बड़ी बारीकियाँ ढूँढ़ने के लिए आज इस बात की जरूरत नहीं कि एक आदमी ऐसी माँ से पैदा हो, जिसको पैदा करने में उसकी माँ का नापाक-आदमी से कोई सम्पर्क न हुआ हो, सीधा ईश्वर से उसका जन्म हुआ हो। आज इस बात की जरूरत नहीं है कि हम अपनी नाक पकड़कर इसलिए बैठें कि ईश्वर हम पर ज्ञान की धार छोड़ देगा, हम मिनटों में विद्वान् हो जायँगे। आज ज्ञान हासिल करने के इतने रास्ते खुल गये हैं कि इस तरह की बातों के लिए कोई जगह नहीं रह गयी।

विज्ञान की प्रगति

आज आदमी मेह बरसा सकता है। यह बता सकता है कि वह किस तरह मेह बरसाता है। इतना ही नहीं, उसकी नकल करके हर कोई मेह बरसा सकता है। आज जरूरत नहीं कि बादलों के किसी फर्जी मालिक को प्रार्थना-पत्र भेजा जाय या उसकी खुशामदें की जायँ या उसको बुलाने के लिए मनों घी आग में जलाया जाय और वह धुँआ बादलों के मालिक के पास इस-

लिए भेजा जाय कि वह उसकी मदद से बादल तैयार कर दे और फिर उन्हें हमारी पृथ्वी पर बरसा दे।

आज आकाश मे उड़ने के लिए किसी देवी-देवता को सिद्ध नहीं करना पड़ता, न ऐसा कोई अनुष्ठान करना पड़ता है, जिसके बल से आदमी को यह ताकत हासिल हो जाय कि वह आकाश में उड़ सके। अपनी बात बहुत दूर या समुद्र के पार पहुँचाने के लिए आज हमे किसी देवता की जरूरत नहीं होती, किसी ऋद्धि-सिद्धि की जरूरत नहीं होती। कुछ रुपयों में घर बैठे ऐसे यन्त्र मिल जाते हैं, जो समुद्र पार ले जाते हैं। अपने इष्ट-मित्रो के दर्शन करने के लिए हमें फरिश्तो और देवी-देवताओं को तकलीफ देने की जरूरत नहीं पड़ती। मामूली यन्त्र के जरिये हम उन्हें बात करते देख-सुन सकते हैं, वे हमसे हजारों कोस दूर क्यो न बैठे हों।

जगह-जगह नाव का इन्तजाम हो जाने से, जगह-जगह नदियो के पुल बन जाने से किसी आदमी को जरूरत नहीं कि वह मन्त्र बोलकर या किसी भगवान् का नाम लेकर नदी पार करने की सोचे। आज की दुनिया यह मुनासिब नहीं समझती कि जिस भगवान् की लोग पूजा करते हैं, जिसका अपने को दासानुदास समझते हैं, उसको जरा-जरा-सी बात के लिए अरबों मील दूर से बुलाया जाय और उससे इतना छोटा काम लिया जाय, जो कुछ रुपयो के यन्त्र से निकल सकता है।

स्त्री-पुरुष भेद नहीं रहा

आज की सचाई यह है कि स्त्री और पुरुष मे बाहरी बनावट के सिवा कोई भेद नहीं। अन्दर का भेद भी बाहरी बनावट के कारण है! इसलिए आज जरूरत नहीं कि किसी काम के लिए औरत-मर्द मे भेद किया जाय। आज एक औरत चारो वर्णों में

से हरएक का काम बड़ी खूबी से कर सकती है। सिर्फ औरतों का काम नहीं, मर्दों का काम भी बहुत खूबी से कर सकती है। जब वर्णभेद मिट गया, तब स्त्री-पुरुष-भेद कैसे रह सकता है?

आज की सचाइयों के आधार पर सैकड़ों बरस के पुराने कायदे बेकार और निकम्मे हो गये। कायदे-कानून की वे किताबें सिर्फ अजायबघर की चीजें रह गयीं, व्यवहार की नहीं। वह बन्धन, जो कभी नारियों, शूद्रों के लिए बनाये गये थे, वे आज की कसौटी पर एकदम बेकार उतरे। हिन्दुस्तान के बाहर सैकड़ों देशों ने अपनी औरतों को पूरी आजादी देकर देख लिया। उस आजादी से कोई नुकसान न समाज को पहुँचा न औरतों को। हिन्दुस्तान ने खुद किसी पैमाने पर औरतों को आजादी देकर देख लिया, उनमें वे सब योग्यताएँ हैं जो आजाद मर्दों में हुआ करती हैं। वे अपनी आजादी की उतनी ही कद्र करती हैं, जितनी मर्द। वे अपनी आजादी का इतना ही खयाल रखती हैं, जितना मर्द। उनको आजादी देने से हिन्दुस्तान में कोई भूकम्प नहीं आया। अगर भूकम्प आया, तो वहाँ आया, जहाँ औरतों को कम-से-कम आजादी थी, यानी बिहार और क्वेटा!

आज की सचाई आदमी को मजबूर करती है कि वह किसी चीज को मानने से पहले उसे अच्छी तरह समझ ले, जान ले। पुरानी सचाई यह थी कि सोचने-समझने की जरूरत नहीं, जो बड़े-बूढ़े और गुरुजन कहें, उसे आनाकानी बिना फौरन मान लिया जाय। आज की सचाई कार्य के कारण पर विचार करने के लिए तैयार रहती है, ऐसे कारण पर जो आँख से दिखाई न दे। पर वह आगे दौड़ जाने की इजाजत नहीं देती। पुराना दर्शन-शास्त्र ऐसे कारणों को मान लेता था, जिसका कार्य कहीं नाम के लिए न था। पुराने समय की मानी सैकड़ों बातों की जब

आज खोज की गयी, तो उनके कारण वे न निकले, जो पहले आदमियो ने माने थे, कुछ और ही निकले। उन कारणों को जब काबू मे किया गया, तो वे क्रियाएँ होने लगीं, जिन क्रियाओ को किसी दूसरे के सिर मढ़ा गया था। कभी वे दिन थे, जब सूरज-चॉद कोई देवता निगल जाया करता था—ग्रहण पड़ जाया करता था। आज देवता ने चॉद-सूरज को निगलना छोड़ दिया। पृथ्वी, चॉद, सूरज तीनो मिलकर ग्रहण का काम करने लगे। एक वक्त था, जब शीतला माता नाराज होकर किसी बच्चे को माता की फुंसियॉ निकाल देती थीं। अब शीतला माता ने नश्तर के डर से लोगो की फुंसियॉ निकालना छोड़ दिया।

थोड़े शब्दो मे आज का सच हमें इतनी दूर ले गया है कि पिछली सचाइयॉ इतनी पीछे पड़ गयी हैं कि उन तक नजर नहीं पहुँच पाती। जब कोई पुरानी सचाइयों को सचाई के रूप मे हमारे सामने रखता है, तो हम सिर्फ इस वजह उनको मानने के लिए तैयार नहीं होते कि वे किसी लघु या महान् ग्रन्थ में दर्ज हैं। हम उनको कसौटी पर सकते हैं। अगर वे ठीक उतरती हैं, तो मान लेते हैं, नहीं तो नहीं मानते। अगर जरूरत समझते हैं, तो उन्हें फिर-फिर कसकर देखते हैं। दर्शन-शास्त्र ने कभी ऐसा नहीं किया कि वह विज्ञान से स्वतत्र खड़ा हुआ हो। अगर विज्ञान की अपनी ही सत्ता कुछ न हो, तो इसमे दर्शन का क्या कसूर? आज अगर विज्ञान की सत्ता सबको दिखाई देती है, तो इससे दर्शन-शास्त्र को कुछ नुकसान नहीं पहुँचा। उसके सिद्धांत निखरे ही हैं, उनका कुछ मैल कटा ही है। यह दूसरी बात है कि पंडितों ने उस निखरे हुए दर्शन को अभी तक कहीं अलग रूप नहीं दिया है। एक तरफ यह भी अच्छा ही है। जल्दी ही विज्ञान खुद

अपना एक दर्शन तैयार करेगा। उसमें अब तक के दर्शनों की निखरी और परखी बातें तो शामिल होंगी ही, कुछ और चीजें भी रहेंगी, जिनसे दर्शन-शास्त्र मे आगे बढ़ने के लिए मार्ग मिलेगा।

अंधकार और प्रकाश

आज के मच की सब से बड़ी कोशिश यह है कि जहाँ तक उससे बनता है, हर सचाई को वह लोगों के दिलो पर इस तरह जमाने की कोशिश करता है कि वह उनकी अपनी हो जाय। वह हर चीज की असलियत को समझ ले और सैकड़ो तरह की झिझकें जो आदमियों मे दर्शन-शास्त्रों की वजह से गहरी जड जमा बैठी हैं, उनकी जड ढीली हो जायँ। हो सके तो वे जड़ें वहाँ बिलकुल न रहने पायें और झिझक की बेल हमेशा के लिए सूख जाय। झिझक और डर मे बहुत करीब का रिश्ता है। देखने में दोनो मे बड़ा अतर है, पर जिस तरह मेंढक का बच्चा और मेढक एक-दूसरे-से अलग मालूम होते हैं। पर जैसे कुछ ही दिनो मे मेंढक का बच्चा अपनी पूँछ खोकर मेंढक हो जाता है, वैसे ही झिझक और डर मे कितना ही अतर क्यो न हो, एक-न-एक दिन झिझक अपना सहारा खोकर डर मे बदल जाने को है। और डर सचाई के पास फटकने से कॉपता है। डर अगर अँधेरा है, तो सचाई प्रकाश है। कहने के लिए तो यह कहा जाता है कि अँधेरा कभी प्रकाश मे नहीं निकलता। वह प्रकाश को देखकर भाग जाता है और प्रकाश उसे पकडने के लिए उसका पीछा करना शुरू कर देता है। अनादि काल से यह दौड़ चलती आ रही है, लेकिन कभी प्रकाश अँधेरे को नहीं पकड़ पाया। इस तरह का विचार आदमी के मन में शायद रात-दिन के

क्रम से आया होगा। दिन का जाना और रात का आना आदमी को ऐसा सोचने के लिए मजबूर कर सकता है, पर आज के विज्ञान ने यह भूल भी सुधार दी है। जहाँ एक तरफ उसने यह कोशिश की है कि रात को दिन मे तबदील किया जाय, वहाँ उसने यह कोशिश भी की है कि यह साबित कर दिया जाय कि दिन-रात का यह भेद एकदम फर्जी है। असलियत में अंधेरे-उजाले की दौड़ नहीं है। वहाँ अँधेरा जब प्रकाश मे बदलता है, तो हमेशा के लिए बदलता है। ऐसा नहीं होता कि वह आँख बचाकर भाग जाय और प्रकाश उसकी खोज में दौड़ने लगे। पुराने शास्त्रकारो ने भी मन के अंधेरे का जिक्र कुछ इसी ढंग से किया है। आज के विज्ञानियों की तरह उनका भी यही खयाल था कि प्रकाश अंधेरे को मिटा सकता है। उपनिषदों मे जहाँ यह जिक्र है कि 'अंधेरे से मुझे प्रकाश मे ले चलो', वहाँ भाषा का अलंकार है। पर मतलब यही है कि मेरे अंदर का अंधेरा मिटा दो। अविद्या की और मूर्खता की सभी ने अँधेरी रात से तुलना की है। अविद्या और मूर्खता दूर हो जाती है, भागती नहीं। इसी तरह आज का सच हमारे अंदर के बहुत से अंधेरे को सचमुच मिटा डालेगा और फिर वहाँ हमेशा उजाला रहने लगेगा।

आज के युगमें तरह-तरह की मूर्खताएँ, मूढ़ताएँ, वहम, अंध-श्रद्धाएँ वैसे ही बढ़ती चली आ रही हैं, जैसी बीते जमाने मे बढ़ती रही हैं। यह कैसे मान लिया जाय कि आज की सचाई हमे ऊँचा उठा रही है और हमारे मन का अंधेरा दूर कर रही है? आज की सचाई ने अगर भूतों की जड़ हिला दी है, तो उनसे बड़े भूत जर्मों की जड़ जमा दी है। आज डाक्टरो को ही नहीं, बच्चे-बच्चे को हर जगह जर्म दिखाई देते हैं। भूत

हमारे बड़े-बूढ़ों की देन है, यह सही है, पर रहते तो सिर्फ अँधेरे-अँधेरे में हैं। आज की देन जो जर्म हैं, वे अँधेरे-उजाले सभी जगह रहते हैं। माना कि आज के जर्म खुर्दबीन से देखे जा सकते हैं, तो पुराने भूत भी तो स्थानों की आँख से देखे जा सकते थे। जिस छुआछूत से हम लोग डरते आये हैं, इन जर्मों की वजह से आज वही छुआछूत इस हद को पहुँच गयी है कि उसका ठिकाना नहीं। नश्तर-क्रिया करते वक्त अगर किसी जर्राह का कोई यंत्र जमीन पर गिर जाय, तो क्या उसे गरम पानी में उबाले बिना कभी वह काम में लिया जा सकता है?

आज का न्याय-विज्ञान इस हद तक पहुँच गया है कि वह न्याय करने की जगह अन्याय ही कर सकता है। इससे खीजकर चीन की सरकार ने उस न्याय-विज्ञान का बाइकाट कर दिया है और उसी विज्ञान पर टिका वकील-वर्ग चीन देश से एक तरह मिट ही गया है। आज का न्याय-विज्ञान सचाई पर पहुँचने की कोशिश ही नहीं करता। जिस सचाई पर कुछ घंटों मे पहुँचा जा सकता है, उसके लिए आज का न्याय-विज्ञान बरसों लगा देता है और फिर भी जो कुछ उसके हाथ लगता है, वह सचाई नहीं होती, सचाई की छाया भी नहीं होती, बल्कि खालिस असत्य होता है। पुराणों की जगह इतिहास ने ले ली। ली थी इसलिए कि सचाई की स्थापना कर दी जायगी। पर आज सभी इतिहासवेत्ता यही कहते सुने गये हैं कि इतिहास-जैसी असत्य चीज दूसरी कोई हो नहीं सकती। एक ही घटना को दो इतिहास-लेखक एक तरह नहीं लिखते। फिर क्यों न शंका उठानेवाला यह कहे कि जब आज के सच में इस तरह के वहम और इस तरह के असत्य हमारे लिए खड़े कर दिये गये हैं, तब बीते कल का सत्य ही क्या बुरा था?

सचाई को जाँचने की आजादी

यह शंका सही है। पर जहाँ आज के सत्य ने इस तरह की चीजें दी हैं, वहाँ आज के सत्य ने हमारा यह डर भी निकाल दिया है कि हम इन सब पर टीका कर सकते हैं, उनके खिलाफ आवाज उठा सकते हैं, उनको भला-बुरा कह सकते हैं और हमारी वह सब सुनी जायगी। यह बात पहले जमाने मे हमें हासिल नहीं थी। इस आजादी के सामने जो इल्जाम आज की सचाई के सिर मढ़े जाते है, बहुत हलके पड़ जाते हैं। उनका होना न होना एक-सा रह जाता है। चेचक के टीके को ले लीजिये। उसके खिलाफ खूब आवाज उठी। तरह-तरह की आवाजे उठीं। यह दूसरी बात है कि उसका रिवाज नहीं मिट पाया। उसको मामूली धक्का भी नहीं लगा। पर अगर आज उसके खिलाफ आवाज उठने की जगह कोई दूसरी रामबाण दवा किसीने ला मौजूद कर दी होती, तो शायद चेचक का टीका बड़ी आसानी से हिंदुस्तान से कूच कर देता। जरा भी दिक्कत न आती। आज की सचाई की यह देन कुछ कम नहीं है। राजनैतिक क्षेत्र मे आज की सचाई ने बड़े-बड़े वहम ढाये हैं। राजा के बारे में न जाने लोग क्या-क्या माने बैठे थे। आज वह बात कहाँ है? अव्वल तो आज राजा हैं ही नहीं और किसी कोने-कचड़े में कोई रह गये हैं, तो उनका प्रजा से बुरा हाल है। वे कैसे जीवित हैं, यह वे ही जाने। आज प्रजाजनों मे अनेक ऐसे आदमी मिल सकते हैं, जिन्हें अगर राजा बनने के लिए दावत दी जाय, तो कानो पर हाथ धर लेंगे। क्या यह आज की सचाई के महत्त्व को प्रकट नहीं करता? पंडा-पुरोहितों के बारे मे लोगों की आज जो श्रद्धा है, उसका जरा पुराने जमाने

की श्रद्धा से मिलान करके देखिये। तब आज की सचाई का महत्त्व आपके मन पर पडे बिना न रहेगा। तीर्थों की श्रद्धा का भी यही हाल है। तीर्थ पर इकट्ठी होनेवाली भीड़ की तरफ न जाइये, जॉचिये उनकी श्रद्धा को। त्यौहारो का भी यही हाल है।

आज की सचाई ने वहम जरूर दिये हैं, पर वहमों से ऊपर उठने की हिम्मत भी दी है। इसलिए आज की सचाई को पुरानी सचाइयो से ऊँचा ही समझना होगा। ⊙

सत्य आगे क्या रंग लेगा, यह कहना जरा मुश्किल है। पर जिस तरह वह आगे बढ़ रहा है, उसे देखकर कुछ अनुमान लगाना बेजा न होगा। अगर हम बड़ी उड़ान ले बैठे, तब तो यह कहेंगे कि सचाई हमें उस जगह पहुँचा देगी, जहाँ से हम चले थे। यानी हम फिर उसी तरह जंगली बन जायँगे, जिस जंगलीपन को छोड़कर हम आज की शहरी हालत को पहुँचे हैं। यह बात सुनने में भले कड़वी लगे, पर समझ के साथ गौर करने से यह इतनी मीठी लगेगी कि इसके मान लेने में कोई झिझक न रह जायगी। बिजली के विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि बिजली जहाँ से चलती है, वहीं पहुँच जाती है। इस तरह उसका चक्र पूरा हो जाता है। बिजली के बारे में तो यहाँ तक पता चल गया है कि वह अपनी जगह से उठेगी ही नहीं, अगर रास्ते में कहीं रोक है, मानो वह सर्वज्ञ है। बीच की रोक हटी नहीं कि वह झट उठ खड़ी होगी। किसी वक्त भी आप रोक लगा दीजिये, वह अपने घर लौट जायगी, अपने में समा जायगी। आपका काम बन्द कर देगी। आप मजबूर होकर उस रोक को हटाते फिरेंगे।

संसार गति-चक्र की तरह

संसार की गति की तुलना चक्र से की गयी है। संसार-चक्र का साहित्य मे जगह-जगह जिक्र आता है। चक्र का भी यही हाल होता है। उसका जब एक सिरा उठकर फिर अपनी जगह आ पहुँचता है, तभी एक चक्र पूरा होता है। तभी गाड़ी

आगे बढ़ती है। उस सिरे को उसके घर पहुँचने से रोकना गाड़ी को रोकना है। हमारी उन्नति की दशा भी यह रग लाकर रहेगी। यह आदर्श है। इसका तो हमने खाखी में जिक्र कर दिया। आज के सत्य का क्या रूप होगा, यह तो हम आगे चलकर बतायेंगे। यहाँ इस आदर्श के बारे में इतना और कह देना चाहते हैं कि इस आदर्श को पहुँचकर हम देखने भर के ही जगली होंगे, बाकी हर तरह देवता होंगे। हममे कोई बुराई नहीं रह गयी होगी। किसी तरह का भेद-भाव न रह गया होगा। सब रस्म-रिवाज मिट चुके होंगे। हम बेहद सुखी होंगे। शुरू के जगलियो की तरह मूरख और अजानकार न होंगे। गरीब हो जाने और गरीबी अपना लेने में जमीन-आसमान का फर्क है। खाने के लिए रोटी न पाना और रोटी होते हुए खाने से हाथ खींच लेना, इसमे जमीन-आसमान का फर्क है। एक में दुख है, दूसरे मे सुख। हमने जो जगलीपन समझ-बूझकर अपनाया होगा, वह क्या दुखदायी हो सकता है? उसे जगलीपन ही नहीं कहना चाहिए। वह एक तरह का कमाल का सुघडपन होगा। वही यह रूप होगा, जिसे देखकर देवता हमसे डाह करने लगेंगे। इस आदर्श की बात को हम यहीं छोडते हैं।

सचाई मनुष्य का स्वभाव बनकर रहेगी

अब देखना यह है कि सत्य का भावी रूप क्या होगा? सचाई मनुष्य का स्वभाव बनकर रहेगी। जो बालक न अपने माँ-बाप से पिटे हैं, न अपने गुरुओं से कमचीं खायी है, वे बड़े होकर क्यो किसीको पीटने की बात सोचेंगे? और क्यो किसी पर लाठी का वार करेंगे? किसी से हमारा मतलब आदमी से है। जब मार-पीट और धमकी-

घुड़की बिलकुल न रहेगी, नाम को न रहेगी या रहेगी तो बहुत थोड़ी रहेगी, तब क्या हम सब लोग सुखी न होंगे? आज से कहीं ज्यादा सुखी न होंगे? पुराने जमाने से बहुत ज्यादा सुखी न होंगे? आज की सचाई के कायल घरों, स्कूलों, कालेजों, क्लबों में और हो ही क्या रहा है? सत्य और अहिंसा की अमली तालीम दी जा रही है। जितने अंशों में वहाँ सत्य और अहिंसा की सैद्धान्तिक शिक्षा दी जाती है, उतने अंशों में वह टोटे में हैं। गुणों की सैद्धान्तिक शिक्षा कभी अमल में आया ही नहीं करती। जो कुछ बोलकर सिखाया जाता है, उसे बोला जा सकता है, बढ़ा-चढ़ा कर बोला जा सकता है, नमक-मिर्च लगा-कर बोला जा सकता है। उस पर अमल नहीं किया जा सकता। जो अमल की राह सिखाया जाता है, उस पर अमल होता है, सवाया-ड्योढ़ा होता है, दुगुना-चौगुना भी हो जाता है।

सत्य के भावी रूप के सम्बन्ध में शंका

बालकों को मारपीट और धमकी-घुड़की से दूर रखना ऐसी जड़ है, जिस पर सच्चरित्रता का पौदा खड़ा होता है। यह पेड़ बनकर क्या रंग लायगा, इसका हरएक अंदाजा लगा सकता है। बेशक, आज की सचाई इस बात के लिए बदनाम की जा सकती है कि उसने एक छोड़ दो-दो महायुद्ध पैदा कर दिये और करोड़ों की जानें ले लीं। बनावटी अकाल डालकर करोड़ों को भूखा मार दिया। बाहरी मुल्कों को छोड़िये, हिन्दुस्तान में ही पाँच लाख आदमी धर्म के नाम पर ऐसे-ऐसे काम कर चुके, जिनके नाम जीभ पर आते जीभ लजाती है। तब फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि सत्य का भावी रूप ऐसा ही सुहा-वना होगा, जैसा ऊपर बताया गया है?

दो-दो युद्धों के सबक

शंका बिलकुल ठीक। बड़ी आग खाकर रसायन तैयार होती है। बड़े-बड़े बलिदान देकर काम की चीज लोगों के हाथ लगती है। जहाँ ये बड़े-बड़े दो युद्ध हुए हैं, वहीं सारी दुनिया शांति का शोर मचाये हुए है। दूसरी लड़ाई जीतने के लिए न जाने कितनी गैस तैयार की गयी, पर वह धरी-की-धरी रह गयी। पहली लड़ाई के तजुर्बे ने गैस को इतना नापाक सिद्ध कर दिया था कि उसके लिए अंतरकौमी कानून बन गया कि वह लड़ाई के काम में न लायी जाय और अगर कोई इस कानून को तोड़ेगा, तो वह दुनिया की नजरों में सारी दुनिया का मुजरिम करार दिया जायगा। दूसरी लड़ाई के आधार पर आज यह कानून बन सकता है कि ऐटम बम गैस की तरह नापाक करार दिया जाय। अगर कभी तीसरी लड़ाई हुई, तो वह धरा-का-धरा रह जाय। जोर का शान्ति-आन्दोलन दूसरी लडाई की ही देन है। तीसरी लड़ाई की बानगी के तौर पर लड़ी गयी कोरिया की लड़ाई से सभी सबक ले रहे हैं। कोरिया की लड़ाई के बंद होते ही जगह-जगह से खबरें आ रही हैं कि कोरिया में क्या-क्या जुल्म हुए, वहाँ का क्या हाल हुआ? वहाँ सब लडनेवालों ने गँवाने के सिवा कुछ न कमाया। जो जहाँ थे, वहीं हैं। बडे नुकसानों से बड़े सबक मिलते हैं। ठोकर खाकर अगर अक्ल आती है, तो तमंचा खाकर अक्ल हमारे साथ एकमेक हो जाती है। फिर वह हमारा साथ कम ही छोडती है। ये सब सबक सत्य का भावी रूप न बदलेंगे, तो कौन बदलेगा?

हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा

हम हिन्दुस्तानियों को दिखाई तो यह दे रहा है कि स्वराज्य

मिलने के बाद से हमारा बेहद पतन हुआ है। सचाई हम खो बैठे। अहिंसा से हमारा कोई नाता न रहा। अचौर्य हमारे खयाल से ऐसे उतरा, मानो हमने कभी उसका नाम ही नहीं सुना था। ब्रह्मचर्य को ऐसा भुलाया कि उसकी याद तक नहीं आती। अपरिग्रह को वह लात जमायी कि वह हमसे दूर-दूर रहने लगा। दिखाई ठीक दे रहा है। उससे इनकार कैसे किया जा सकता है? पर इससे भी तो इनकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दुस्तान की इज्जत इतनी बढ़ी है, जिसे देखकर पुराने-पुराने मशहूर देश हिंदुस्तान से डाह करने लगते हैं। अब से पाँच-सात बरस पहले तक हम हिंदुस्तानी दूसरे मुल्कों में झूठे, लफंगे, उठाईगीर, उचक्के कुली और न जाने क्या-क्या समझे जाते थे। पर आज? आज हम पर सब मुल्कों को एतबार है। हमारी सचाई मशहूर हो गयी है। हमारी अहिंसा चमकने लगी है। हमारे अचौर्य पर किसीने कोई धब्बा नहीं लगाया, न किसीने हमारे ब्रह्मचर्य को बदनाम किया। अपरिग्रह मे हमारा यह हाल है कि हमारे देश में सचाई की खातिर हर तरह की शोहरत से हाथ अलग रखा गया है। कोरिया की लड़ाई के मामले मे अगर हम जरा भी बहक गये होते, तो न जाने कितने बदनाम हो गये होते। अगर ममता छोड़ना अपरिग्रह है, तो सचमुच हिन्दुस्तान ने जितना ममत्व त्यागा है, उतना आज तक किसी दूसरे ने नहीं त्यागा। हम घर में कितने ही बदनाम हो, बाहरवाले हम पर अँगुली नहीं उठा पाये।

मान लीजिये, मै बहुत भूखा हूँ, मेरे पास एक रोटी है। इतने में एक भिखारी आ जाता है। मैं वह रोटी उसे दे देता हूँ। रोटी दे देने के बाद मेरे अन्दर हलचल हो सकती है और मेरे सब अंगों में अन्दर-ही-अन्दर गहरा युद्ध छिड़ सकता है। पर

दुनिया और वह आदमी, जिससे मुझे रोटी मिली है, मेरी तारीफ ही करेंगे। मुझको त्यागी ही समझेंगे, मेरी पूजा करेंगे, मेरे गीत गायेंगे। यही हाल हिन्दुस्तान का है। वह अपनी जान जोखिम में डालकर दूसरों की मदद करता है। चीन की आजादी को उसने बर्तानिया से पहले माना, जिसको अमेरिका आज तक नहीं मान रहा है। यह जोखिम का काम नहीं तो और क्या है? हम अन्दर कितने ही पतित क्यों न हो, चीन की नजरों मे और दुनिया के और मुल्कों की नजरों में पतित नहीं समझे जा सकते। हर तरह आदर के पात्र समझे जाते हैं। दुनिया की कई कौमें जब कोरिया में लड़ रही थीं और मार खाने के बाद जब उनका पासा पलटा और वह उत्तर कोरिया की तरफ बढी, तब यह आवाज हिन्दुस्तान ने ही उठायी थी कि देखना, ३८ पड़ी रेखा पार न करना। कितनी जोखिमभरी आवाज थी! पर हिन्दुस्तान ने सारी प्रसिद्धि को लात मारकर यह आवाज उठायी ही। दुनिया हमारे अन्दर की लड़ाई को नहीं देखेगी, वह तो यह देखेगी कि हम दुनिया के साथ कैसा बरताव करते हैं। हम पांडेचेरी, गोवा, दामन, ड्यू, सबको भूले हुए हैं, पर चीन को कभी नहीं भुलाते। बराबर हिन्दुस्तान की रट लगी हुई है कि जब तक चीन यू० एन्० ओ० मे शामिल नहीं होता, तब तक यू० एन्० ओ० सच्चे मानी मे यू० एन्० ओ० नहीं कहला सकता। कितनी जबरदस्त आवाज है। कितना जोखिम-भरा काम है! पर सचाई है। हिन्दुस्तान सचाई हाथ से नहीं खो सकता। आज की यह सचाई क्या भावी सच को अपना सुहावना रूप लेने मे मदद न करेगी?

सब हिन्दुस्तानी एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे

हिन्दुस्तान ही नहीं, सारी दुनिया बदलेगी। सत्य और

अहिंसा पर सारी दुनिया को विश्वास करना पड़ेगा। बहुत जल्दी वह दिन आने को है, जब दुनिया के सब मुल्क एक-दूसरे के साथ सचाई का व्यवहार करेंगे। आदमी को हिंसा को सबसे बड़ा गुनाह समझेंगे। हम ऐसा समझते है कि जब सारी दुनिया का यह हाल होगा, तो उसका केन्द्र होगा, हमारा हिन्दुस्तान ! यह अन्दर से पतित देश एक दिन बदलकर रहेगा। तब उसे यह पता हो जायगा कि वह सारी दुनिया का केन्द्र बना हुआ है। जिस तरह आज हिन्दुस्तान दूसरे मुल्को की नजर में अपने आपको कभी नहीं गिराता, कभी कोई ऐसा काम नहीं करता, जिससे देश या देशवासी बदनाम हों, ठीक इसी तरह एक दिन आकर रहेगा, जब हर हिन्दुस्तानी यह सोचने लगेगा कि वह कोई ऐसा काम न करे, जिससे उसका कुल बदनाम हो या उसका गॉव बदनाम हो या उसका सूबा बद-नाम हो। देर-सवेर यह होने को है ! फिर क्या वह दिन ऐसा न होगा कि जब हम सब इस तरह मिलकर रह रहे होंगे, मानो एक कुटुम्ब के आदमी हों। हमारे पड़ोसी चीन में जब एक ही घर में सब धर्मवाले हिल-मिल कर रह लेते हैं, तो हमें वैसा करने मे क्यो दिक्कत होगी और हमारे सत्य का भावी रूप ऐसा ही होगा, इसे मानने मे किसीको क्यों झिझक होगी ? यह कोई ऐसा काम नहीं, जो सिर्फ चीन या विदेशों में हो रहा हो, किसी हद तक हिन्दुस्तान में भी हो रहा है। तो, वह क्यो न अगले कल सारे देश में फैल जायगा ?

रोटी-बेटी-व्यवहार और भावी सत्य

धर्म-भेद मिटते ही या धर्म-समन्वय होते ही या धर्म-सम-भाव आते ही जाति-भेद तो ऐसे रह जायगा, जैसे उड़द पर की

सफेदी। जाति-समन्वय विचारों की अपेक्षा कहीं-का-कहीं पहुँच गया है। हाँ, अमल मे कम है। इसे देर नहीं लग सकती। जब फलों के पकने की ऋतु आती है, तब बड़ी जल्दी सब-के-सब पकने लगते हैं। अगले कल हिन्दुस्तान का यही हाल होकर रहेगा। जाति-भेद मिटने में कोई देर नहीं लगेगी। हम रात को अनेक जाति बनकर सोये होंगे और सुबह एक जाति बने हुए उठेंगे। जाति-भेद की पक्की दीवारें धर्म नहीं, रोटी-बेटी-व्यवहार है। रोटी-व्यवहार सन् '२० में एकदम टूट चुका है। दो-तीन बरस के बाद वह धीरे-धीरे फिर लौट आया। पर वह रूप हरगिज न ले पाया, जो सन् '२० से पहले था। रोटी-व्यवहार धर्म का नाम लेकर तोड़ने की कोशिशें बरसों से चल रही थीं। वे सफल होने की जगह इतनी असफल होती थीं कि नया भेद खड़ा कर देती थीं। धर्म के नाम पर रोटी-व्यवहार एक करने के लिए दूसरे धर्मवाले को शुद्ध किया जाता था। या यों कहिये कि अशुद्ध किया जाता था। मुसलमान रोटी-व्यवहार मे आग की तरह शुद्ध है। वह कहीं भी खाना खा सकता है। उसके धर्म को धक्का नहीं पहुँचता। अगर कोई रोक है, तो बहुत थोड़ी। यही हाल ईसाई का है। इनको जब कोई धर्म के नाम पर रोटी-व्यवहार के लिए शुद्ध करता है, तो एक तरह अशुद्ध ही करता है। बेटी-व्यवहार के लिए शुद्ध करने की बात तो कभी किसी धर्म ने सोची ही नहीं। अगर सोची भी, तो उस पर अमल करने की हिम्मत नहीं थी। यों रोटी-व्यवहार असफल ही रहा। सन् '२० मे वह धर्म के नाम पर नहीं किया गया। वह देश और नेशन के नाम पर किया गया। वह खूब फैला। जो कुछ उसमे कमी आ गयी है, उसकी पूर्ति किसी दिन पलक मारते अपने आप हो जायगी।

चिन्ता की बात नहीं। बेटी-व्यवहार के लिए देश और नेशन के आधार पर कभी बड़ी कोशिश नहीं की गयी, अगर की जाती तो वह भी जरूर सफल होती। विचारों में बेटी-व्यवहार बहुत फैल चुका। फिर क्यो न यह कहा जाय कि अगले कल इस मामले मे सच का यह रूप होगा कि रोटी-बेटी-व्यवहार के लिए सारी दुनिया एक हो जायगी। हिन्दुस्तान तो एक हो ही जायगा।

सब धर्म राष्ट्रीय रंग में रंग जायँगे

एक समय था, जब एक धर्म दूसरे धर्म को नहीं देख सकता था। हरएक की यही इच्छा रहती थी कि मौका मिले, तो एक-दूसरे के धर्मायतन तोड़ दिये जायँ। दूसरे को या तो विधर्मी करें या अपने धर्मवाला बनाये अथवा दुनिया से उसे नेस्तनाबूत कर दे। धीरे-धीरे इस घृणा मे कमी आयी। इसने शास्त्रार्थ का रूप लिया। शास्त्रार्थ मे डंडे चल जाते थे। डंडे से ही जीत-हार मानी जाती थी। उससे तंग आकर हर धर्म ने दूसरे धर्म-वालों को अपने यहाँ बुलाकर, अपने प्लेटफार्म पर अपने धर्म पर बोलने के लिए कहा। इसमें कभी-कभी थोड़ा मनमुटाव आया, पर वह पनप न पाया। डंडे की पहुँच तो हो ही न पायी। यह धर्म-सम्मेलन अब यह रूप लिये हुए है कि जो धर्म इस सम्मेलन को बुलाता है, सब धर्मवाले उसकी तारीफ करते हैं। धीरे-धीरे अब यह सम्मेलन यह रूप ले रहा है कि एक ही प्लेटफार्म से सब धर्म साबित करने की कोशिश करते हैं कि सारे धर्म दुनिया की भलाई के लिए पैदा हुए हैं, किसीका बुरा नहीं चाहते। क्या यह सब अगले कल के लिए शुभ-चिह्न नहीं हैं? क्या यह सब इस बात मे सहायक नहीं होंगे कि अगले कल

विचारों की राह ही बदल देंगे और अगले कल का रूप कुछ-का कुछ हो जायगा। सत्य का रूप उस वक्त तक अधूरा ही रहेगा, जब तक हममें इतने ऊँचे दर्जे का प्रेम जगह न पा ले कि हम दूसरों को अपने जैसा ही समझने लगें। इस आदर्श तक पहुँचने में देर लग सकती है, बहुत देर भी लग सकती है, पर अगले कल का कदम यह बताये बगैर न रहेगा कि हम उसी आदर्श की तरफ दौड़े जा रहे हैं।

पतन के बाद उन्नति प्रकृति का नियम

सन् '२६ में हम कश्मीर गये थे। उन दिनों श्रीनगर में ताले-कुञ्जी का बहुत कम रिवाज था। हम जिस जगह ठहरे थे, वहाँ तो कोई दरवाजे भी बन्द न करता था। एक दिन भी ऐसा न हुआ कि कोई चीज गुम हुई हो। कई तीर्थों पर भी इसी तरह का हाल देख चुके हैं। कई पहाड़ी जिलो मे यही हाल हमने अपनी आँखो देखा है। फिर क्यो न कल को हम सारे हिन्दुस्तान को ऐसा देखेंगे, जैसा अब तक देख चुके हैं? अगर चीन मे कुछ स्टेशनों पर किताबों की दूकान के दूकानदार गैरहाजिर रहकर कभी टोटे मे नहीं रहते—जितने ग्राहक आते है, किताब या अखबार लेते और उसके ठीक-ठीक दाम गुल्लक मे डाल देते हैं, तब क्या अगले कल यही हाल हिन्दुस्तान का नहीं हो सकता? चीनी यात्री बहुत पहले हिन्दुस्तान आकर हिन्दुस्तान मे यह तमाशा देख गये हैं कि यहाँ के लोग रात को दरवाजा बन्द करके नहीं सोया करते थे। तब फिर अगले कल हम अपने उस पुराने रिवाज को ज्यादा शुद्ध रूप मे क्यो नहीं जारी कर सकते? इसमे शक को कहाँ जगह है? आज की हमारी पतित अवस्था हमे उस ओर घसीटे लिये जा रही है।

प्रकृति का नियम ही कुछ ऐसा है कि दाँतों को सफेद करने के लिए काले मंजन से पहले काला करना पड़ता है। बर्तन को चमकाने के लिए मिट्टी लगाकर और मैला करना पड़ता है। मैले कपड़े को उजला करने के लिए और लीद-मिट्टी में लथेड़ना पड़ता है। नासमझ यह क्रिया देखकर घबरा सकते हैं। पर जिन्हें प्रकृति का नियम मालूम है, वे आज की पतित अवस्था से क्यों घबराने लगे ?

मँझकर चमकने के लिए पतित हुए हैं

हम जिस पतित अवस्था में हैं, क्या उससे और ज्यादा पतित अवस्था में नहीं आ सकते ? बहुत-सी जातियाँ पतित से पतिततर और पतिततम होकर अवनति के गड्ढे में जा पड़ी हैं। क्या वैसा ही हम हिन्दुस्तानियों का हाल नहीं हो सकता ?

बेशक हो सकता है, अगर हम सब-के-सब हिम्मत खो बैठें। सब गिरे हुए उठते हैं, तो हम क्यों न उठेंगे ? आज का हिंदुस्तान हमें यह बता रहा है कि हम पतित से पतिततर नहीं होंगे। हममें अभी सैकड़ों ऐसे मौजूद हैं, हजारों भी हो सकते हैं, जिनमें आशा पूरी जोर मार रही है। लाखों ही ऐसे हैं, जो अभी निराश नहीं हुए। करोड़ों ऐसे हैं, जो एक आवाज पर भारत का रंग बदल सकते हैं। पतित लोग उन्हें देखकर न बदलें, यह हो नहीं सकता। पतितों का उद्धार करनेवाले न भगवान् होते हैं, न संत-महंत। उनका उद्धार करता है जनता-जनार्दन ! अंग्रेजों के रहते-रहते हिन्दुस्तान ने कम संत नहीं पैदा किये, पर वे जनता-जनार्दन को न जगा पाये; इसीलिए वे पतितों का उद्धार न कर पाये। गांधीजी पैदा होकर चल बसते, पतितों का उद्धार न कर पाते, हिन्दुस्तान को स्वराज्य न

दिला पाते, पर उन्होंने जगा दिया जनता-जनार्दन को और उस जनता-जनार्दन ने सदियों का काम बरसों में कर डाला। चीन ने सारा जादू जनता-जनार्दन को जगाकर किया है। हम देख रहे हैं कि हिन्दुस्तान की जनता जागी हुई नहीं है, तो सोयी हुई भी नहीं है। इशारे की देर है कि वह अगले कल को बदल देगी। इसी आधार पर हम कहते हैं कि हम पतिततर होने के लिए पतित नहीं हुए हैं। मंझकर चमकने के लिए पतित हुए हैं।

अगले कल हिन्दुस्तान पूरा अहिंसक बन जायगा

'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात', अगर यह कहावत सच है, तो हमारा कल जरूर शानदार होगा। हमने स्वराज्य जिस ढंग से लिया है, वह दुनिया के इतिहास में सोने के अक्षरों में लिखे जानेवाली चीज है। इतिहास में कहीं यह बात नहीं मिलती कि किसीने दुश्मनों का खून बहाये बगैर अपना मुल्क गुलामी के फंदे से निकाला हो। हिन्दुस्तान दासता के जाल से निकल गया और निकालनेवाले को एक का भी खून न बहाना पड़ा। न किसीको लूटना पड़ा, न किसीको सताना पड़ा। क्या आज तक किसीने दुश्मन को जय-जयकार के साथ विदा किया है? अगर किया है, तो सिर्फ बीसवीं सदी के हिन्दुस्तान ने! हिन्दुस्तान पर हद दर्जे के जुल्म करनेवाली अंग्रेज-कौम के प्रतिनिधि माऊण्टबैटन को जय-जयकार के साथ विदा करना इस सदी का नहीं, इस युग का चमत्कार मानना पड़ेगा। आज की स्वतंत्र सरकार की जड़ में यह भलाई मौजूद है। भले ही आज वह सैकड़ों बुराइयों में फँसी हो, बात-बात में गोली चला बैठती हो, जाने-अनजाने सैकड़ों को भूखों मर जाने देती है, सोच-समझकर या बिना सोचे समझे दासियों

को न्यायालय न भेजकर सीधे जेलखाने भेज देती हो; पर आज तक उसने किसी विदेशी के साथ सख्त व्यवहार नहीं किया। कोरिया-युद्ध का समर्थन किया, पर लड़ने के लिए एक सिपाही नहीं भेजा। जैसे ही उसे चेताया गया, वैसे ही उसने भारत-भूमि से गोरखों की फौज में भर्ती बन्द कर दी। उसने हमेशा सब देशों की आजादी चाही। किसीकी गुलामी में कभी उसने कोई मदद न की। आज भी अगर कोरिया उसके सिपाही जा रहे हैं, तो फौजी बाना उतारकर। ऐसे भारत से कल के लिए यह आशा रखना कि सारा देश ईमानदार बन जायगा, कोई बड़ी आशा नहीं है। गुलाब की झाड़ी मे कॉटे होते है। डाली-डाली कॉटो से लदी रहती है। फूल आने से पहले कोई भी नासमझ उसे कटीली झाड़ी समझकर बगीचे से उखाड़ फेंक सकता है, पर समझदार ऐसा नहीं कर सकता। उसे मालूम है गुलाब की झाड़ी बहुत खुशबूदार फूल देती है। हिन्दुस्तान की आज की कटीली हालत से यह नतीजा वे ही लोग निकाल सकते हैं कि यह आगे चलकर और भी ज्यादा हिंसक बनेगा, जो लोग न इसकी जड़ से वाकिफ हैं, न इस बात से वाकिफ हैं कि हिन्दुस्तान ऐसे-ऐसे ऋषियों को जन्म दे चुका है, जिन्होंने जानवर तक की हिंसा को नाजायज समझा है। ऐसे-ऐसे राजाओं को जन्म दे चुका है, जो बहुत बहादुरी के साथ लड़े हैं, लेकिन बड़ी हिंसा देखकर इतने पछताये हैं कि फिर कभी लड़ाई का नाम ही नहीं लिया। क्या ऐसा हिन्दुस्तान आनेवाले कल मे हिंसक बन सकता है? अगले कल जरूर उसके यहाँ से सच्चे मानो में फॉसी का विधान हटकर रहेगा। मौत की सजा ऐसी उठेगी कि फौजी सिपाही को भी वह न दी जाया करेगी।

जिस हिन्दुस्तान ने स्वतन्त्र होने के बाद से कभी किसीकी बुराई नहीं सोची, हमेशा हमले के खिलाफ आवाज उठायी, वह हिन्दुस्तान क्या कभी यह सोचेगा कि किसी दूसरे मुल्क को फिर चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, अपने मातहत करे ?

सत्य का आदर्श रूप : ६ :

शुद्ध सत्य क्या है, यह जानना इतना ही मुश्किल है, जितना यह जानना कि शुद्ध आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है ? सत्य के आदर्श में ऐसा शुद्ध या विशुद्ध रूप रह ही नहीं सकता, जो वुद्धि से परे हो। उसके वारे में चर्चा भी कैसे की जा सकती है ? सत्य के आदर्श रूप में वही कहा जायगा, जो कल्पना की पहुँच के अन्दर है। इतना समझ लें और उसीको आदर्श मान-कर उस तरफ दौड़ लगाये, यही कौन कम है ? सत्य के जिस भावी रूप का पहले जिक्र किया, उस पर अमल करने के लिए यह आदर्श काम का सावित होगा।

सच वोलने का तात्पर्य

"सच वोल" "धर्म कर", इन दो में दुनिया की ऐसी कौन भलाई है, जो न छिपी हो ? कहने के लिए सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, पाँचों जरूर हैं, पर सच वोलने-वाले के लिए वाकी चार प्रतिज्ञाएँ लेने की जरूरत नहीं। सच वोलने पर चारों अपने आप निभ जायँगे। हिंसक सच बोलकर अपना काम नहीं चला सकता, न चोर और न जार। रहा परि-ग्रही, उसका भी सच वोलकर काम नहीं चल सकता। फिर क्या अकेला सच वोलना काफी नहीं हो सकता ?

सच सोचना और सच करना

सत्य वोलने का मतलब है—सच सोचना, सच करना। इन दो के वगैर सच वोलने का कोई मतलब नहीं। सच

सोचना और सच करना, ये दो ऐसी बातें हैं, जिनके बिना सच बोला ही नहीं जा सकता। इनके बिना जो सच बोलता है, वह सच समझता नहीं। सच बोलते हुए भी सच नहीं बोलता। अगर कोई पागल अपनी माँ को माँ कहे, तो क्या यह समझा जा सकता है कि वह पागल नहीं है? जब वह अपनी माँ को माँ न कहकर कुछ और कह बैठता है, तब क्या लोग उसको बुरा मानते हैं? वह उस वक्त झूठ नहीं बोलता। उसकी आँखे उसे धोखा देती रहती हैं, इसी वास्ते वह कुछ-का-कुछ कह बैठता है। असल मे पागल सच सोच ही नहीं सकता। बिना सच सोचे जो कहा जायगा, वह सच नही होगा, सच की कसौटी पर पूरा नहीं उतरेगा। सच सोचकर ऐसी बातें कही जा सकती हैं, जो सच की कसौटी पर सौ टच का सोना साबित होंगी, पर व्यवहार की कसौटी पर उनमे नाम के लिए भी सच न मिलेगा। पर क्या ऐसी बातो को कोई असत्य कहने की हिम्मत कर सकता है? बच्चो के लिए जो पशु-पक्षियो की कहानियाँ गढी जाती हैं, वे करीब-करीब ऐसी ही होती हैं। यही हाल पुराणो का है। पुराण समाज की भलाई को विचार मे रखकर लिखे गये। उनके पीछे सच का सोच-विचार मौजूद है, फिर वे देखने में कितने ही बेतुके क्यों न हो, कितने ही सत्य से बेमेल क्यों न हो, उनको सत्य माना जाता है। इससे समाज को लाभ हुआ है। कोई कहेगा कि इससे हानि भी हुई है, तो हम उसे भी कबूल करेंगे, पर लाभ के सामने हानि नहीं के बराबर है। सच सोच-विचार के बाद जो बोला जायगा, वह सच बोलना समझा जा सकता है। पर यह सच बोलना उस वक्त तक अधूरा ही रहेगा, जब तक उस पर मौका पड़ने पर अमल न किया जाय। सोचना, बोलना और

करना, तीनों सच बोलने के अंग हैं, जिन पर अलग-अलग चर्चा की जा सकती है, पर उनको अलग नहीं किया जा सकता। सत्य की यह बारीकी जब तक समझ में न आ जाय, तब तक सच बोलने का काम ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता।

सच की इस बारीकी को ध्यान में रखकर सत्य के आदर्श का रूप कल्पना के घेरे में आ सकता है।

सच के आदर्श को पहुँचने पर

जब एक आदमी सच के आदर्श तक पहुँच जायगा, तब क्या किसी भी आदमी को वह यह मौका देगा कि उसमें ऐब ढूँढ़ सके या उस पर उँगली उठा सके? जैसे सच्चे प्रेमी जिससे प्रेम करते हैं, उसकी जरूरत को बिना कहे समझ जाते हैं; वैसे ही आदर्श सत्य को पहुँचा मनुष्य हर उस आदमी की जरूरत को समझ सकेगा, जो उसके पास खड़ा होगा या बैठा होगा। वह उसके साथ इसी तरह का बर्ताव करेगा, मानो उसके मन का हाल जानता हो। आदर्श सचाई हमें यह मानने के लिए मजबूर करती है कि हमें उस वक्त दूसरों के मन की बात जानने की योग्यता प्राप्त हो ही जानी चाहिए। ऐसा सोचना बढ़कर सोचना नहीं है।

लोग महामानव की कल्पना करते चले आये हैं। अगर कोई कभी महामानव हुआ, तो उसे आदर्श सत्यवादी होना पड़ेगा। आदर्श सत्य बोलनेवाले के साथ ऐसी बात हरगिज न होगी कि वह दूसरों के मन की बात न जान सके। यह क्यों न कहा जाय? सचाई मन की उस शुद्धता का नाम है, जहाँ समझने की ताकत पर कोई मैल नहीं रह जाता। अकेले काँच में ही मुँह दिखाई दे, ऐसी बात नहीं। काला लोहा इतना चमकाया जा

सकता है कि उसमे भी मुँह दिखाई दे। फिर क्या आदमी का दिल इतना साफ नहीं किया जा सकता कि उसमें झट दूसरे के भाव अपने आप चमकने लगें? रेडियो का यत्र जब एक नाप की लहर पर लगा दिया जाता है, तो उस नाप की उठी लहरें दुनिया के किसी हिस्से से क्यों न उठी हों, वह उन्हें पकड लेता है और ईमानदारी के साथ हम तक पहुँचा देता है। जो हजारों मील दूर बोले गये होते हैं। फिर क्या महामानव का मन इतना शुद्ध न होगा कि सामनेवाले के मन के विचार उसके मन मे प्रतिबिंबित हो जायँ? यह बड़ी बात तो नहीं मालूम होती।

दुनिया को शिकायत है कि लोग शब्दों पर जाते हैं, भावों को नहीं ताड़ पाते। क्या महामानव हो जाने पर ऐसी शिकायत बनी रहती है? दुनिया को शिकायत है, कोई दूसरे का खयाल नहीं करता। आदमी जब महामानव हो जायगा, तब यह शिकायत कैसे रह सकेगी? आदर्श यो ही नहीं सोच लिया जाता, बीजरूप मे वह कहीं-न-कहीं मौजूद ही होता है। सच्चा प्रेमी अपनी प्रेमिका की तकलीफ उसकी आँखों से भॉप लेता है, पति से प्रेम करनेवाली नारी पति की जरूरत उसके मुँह से निकले बिना ताड़ लेती है। माँ बेटे की जरूरत को अगर ताडना न जानती होती, तो क्या न बोलनेवाला बच्चा इतनी जल्दी बडा हो पाता? दूसरे के मन का हाल जान लेने की ताकत बीजरूप से जब माँ में मौजूद है, प्रेमी-प्रेमिकाओं में मौजूद है, तब उसके आदर्श रूप की कल्पना क्यो नहीं की जा सकती?

जिन विज्ञानियों ने पशु-पक्षी, कीडे-मकोडे, पेड़-पत्थर आदि का अध्ययन किया, उनका कहना है कि इनमे पहले से मौसम को जान लेने या रोग फैलाने की अद्भुत शक्ति है।

वह आदमी में नहीं है, पर पैदा हो सकती है। अमर-बेल हवा मे से अपनी खुराक खींच लेती है; आदमी अपनी खुराक क्यो नहीं खींच सकता? आज का आदमी शायद ही कोई ऐसी इच्छा करता है, जो किसी जीवधारी को किसी-न-किसी रूप में पहले से हासिल न हो। वह हवा में चलना चाहता है, पक्षी हवा मे चलते हैं। वह जाड़े-गरमी से बिना कपड़ो के बचना चाहता है, सब पशु-पक्षी भी ऐसा करते हैं। वह दूर की चीज साफ-साफ देख लेना चाहता है, चील और गिद्ध को भी ऐसी ऑखे मिली हुई हैं। वह बिना खाये पिये जिन्दा रहना चाहता है, किसी पेड़ को भी न मुँह है, न दाँत। पेड़ो की जड़ को बहुत लोग मुँह कह देते हैं। कुछ लोग पत्तो को मुँह मान लेते हैं, पर अमर-बेल के पास तो वे दोनो नहीं, पर वह जीते रहने और बढ़ने की इतनी योग्यता रखती है कि कोई पेड़ उसका मुकाबला नहीं कर सकता। अगर आदमी ऐसी चीजो को आदर्श माने, तो वे पहले से ही ऐसे प्राणियो को मिली हैं, जो आदमियो से कहीं नीचे समझे जाते हैं। तब आदमी कहाँ गूलर के फूल की इच्छा कर रहा है?

सत्य के आदर्श के रूप में सारा विश्व एक कुटुम्ब

आदमी ने घड़ी तैयार की। उसमें दसियो पुर्जे हैं। कोई धीमी चाल से घूम रहा है, कोई तेज चाल से। कहीं कोई झंझट नहीं। प्रकृति के सैकड़ों काम नियमित रूप से हो रहे हैं। आदमी जिन्हें झंझट समझता है, वे भी सब नियम के अन्दर हो रहे हैं। जैसे, चन्द्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण। चन्द्रमा नियम के अन्दर घटता-बढ़ता है। पृथ्वी नियम के अन्दर सूरज का चक्कर काटती है। परमाणु के इतिहास ने यह बता दिया है कि दुनिया के सब काम नियम से चल रहे हैं। तब क्या सत्य के आदर्श

रूप मे महामानव के समाज का सारा काम बिना झंझट के न चल सकेगा ? क्यो न सारा जगत् एक देश का रूप ले लेगा या एक कुटुम्ब का रूप ले लेगा ? किसीने यह कहकर कौन सूरज को मुँह मे रख लिया ? घर में मौके-बे मौके खाने-कपड़े की कमी होने पर सब मिल-जुल कर निभा लेते ही हैं। छोटे-से-छोटा बच्चा कुछ-न-कुछ त्याग कर डालता है। क्या दुनिया का बड़ा कुटुम्ब सत्य के आदर्श रूप में इसी तरह प्रेम से न रह सकेगा ? इसमे कौन-सी असंभव बात कही जा रही है ?

सत्यवादी समाज मे चोर-डाकू को जगह कहाँ ? जब सभी सब चीजो के मालिक हैं, तो चोरी कैसी ? मार-धाड कैसी ? उस समय सारा समाज सोने-चाँदी के ढेर में घिरे रहने पर भी ऐसे अपरिग्रही होगा, जैसे सिद्ध आत्मा कर्म-वर्गणाओं से घिरे रहने पर भी जल मे कमल की तरह अलिप्त रहता है।

प्रतिज्ञा-विहीन समाज

सत्य का आदर्श रूप प्रतिज्ञा-विहीन होगा। आज अगर कोई ऐसे कुल मे जन्म लेता है, जहाँ पीढियों से मास-मदिरा का सेवन नहीं किया गया, तो क्या उसे मॉस मदिरा त्याग की की प्रतिज्ञा लेनी पडती है ? हिंसा, चोरी, कुशील, चीज अपनाना आदि त्याग के सब व्रत समाज को ऐसे छोडकर चल देंगे, जैसे गधे के सर से सींग। गधे से सींग प्रकृति ने कुछ यों ही नहीं छीने, उसके बदले उसने उनको कहीं मजबूत टाँगे और टापे दे दी हैं। ऐसे ही इन व्रतो को मनुष्य से कुछ यों ही नहीं छीना जायगा, उनको उतना उदार-मन बना दिया जायगा कि इनकी उसे कोई जरूरत ही न रह जायगी। तीज-त्योहार, पूजा-पाठ,

मंदिर-मसजिद, तीर्थ-यात्रा, ये सब बेकार हो जायँगे। बंदर को बाँध कर रखना पड़ता है, पक्षी को पिंजरे में रखना पड़ता है, इसलिए कि वे खाते कम और बिगाड़ते ज्यादा हैं। आदमी ऐसा नहीं करता, उसे बाँध कर नहीं रखा जाता। वह जब ऐसा करने लगता है, तो उसे भी बाँध कर रखना पड़ता है। आदर्श सत्यवादी अपने कर्तव्य को पूरी तरह समझनेवाला होगा। तब उसके लिए पूजा-पाठ की जरूरत ही कहाँ रह जायगी ? वह तीर्थ-यात्रा किसलिए करेगा ? उसका रोज ही त्यौहार बनेगा। फिर वह त्यौहार की छुट्टी क्यो रखने लगा ? त्योहारों की जड़ मे असमानता है। त्यौहारो के नाते भूखो तक ऐसी चीज पहुँच जाती है, जिसके उन्हें स्वप्न में भी दर्शन नहीं हो सकते। जब असमानता न रहेगी, तो त्यौहारो की याद भी नहीं रहेगी।

गलत मूल्यांकन

हमने इस युगमें असंख्य चीजो को बे-मतलब का मान दे रखा है। उनका अनाप-शनाप मूल्य आँक लिया है। सोना-चाँदी मिट्टी के सिवा क्या है ? शाल-दुशाले भेड़ की पश्म के सिवा और क्या हैं ? 'पश्मीना' नाम चिल्ला कर यह कह रहा है। यही हाल कस्तूरी और केशर का है। महल और किले भी एक तरह की गुफाएँ हैं। इनसे ऊबकर आये दिन आदमी जंगलो की हवा खाने निकलता है। आदर्श युग में आदमी सब चीजो का ठीक-ठीक मोल आँकना सीख गया होगा। क्या तब भी वह उन आफतों से बचा न मिलेगा, जिन आफतों में आज फँसा है ?

भूत-प्रेत ही नहीं, इनका बड़ा सरदार आज की व्यवस्था की देन है। जब यह व्यवस्था न रहेगी, तो ये सब कैसे टिक

सकेंगे ? यही हाल राज्य-व्यवस्था का है। सत्य-युग में इसके लिए कोई जगह न रह जायगी। संस्कार, जिनकी गिनती बढते-बढ़ते सोलह हो गयी है, सिफर को पहुँच जायँगे। मुर्दे के साथ ऐसा व्यवहार किया जायगा, जैसा और बेकार चीजों के साथ। आज जो उसके साथ व्यवहार हो रहा है, उसमे वे सब बेवकूफियाँ शामिल हैं, जो समाज की बाल्यावस्था में थीं। वे कैसे रह सकेंगी ?

कमल-भक्षी नहीं, कर्म-भक्षी

सत्य का आदर्श रूप बेहद सुहावना तो होगा ही, बडे काम का भी होगा। कहीं कोई यह न समझ बैठे कि समाज खाने-पीने और मौज उड़ाने मे लगा रहेगा—कोरा कमल-भक्षी बना रहेगा। ज्ञान-कर्म की मेहनत से पायी हालत कहीं इतनी निकम्मी हो सकती है ? लट्टू जब जोर से घूमता है, तो बच्चे कह बैठते हैं, लट्टू सो गया। उस युग मे मनुष्य का यही हाल होगा। ज्ञान और कर्म का ऐसा मेल हो गया होगा कि वे अलग-अलग दो समझे ही न जाते होंगे। आज के युग मे ऐसे आदमी मिल सकते हैं, जो सोचते-ही-सोचते हैं, करते कुछ नहीं, शायद कर सकते भी नहीं। जिन्हें सोचने की आदत पड़ जाती है, वे सोचने को कम समझ बैठते हैं। इस युग मे सोचने का मोल बेहद बढ़ा हुआ है। ऐसा न होता, तो इस पर कोई क्यों अपना वक्त बरबाद करता ? सोच का नतीजा हुआ कि सत्य सोचा ही नहीं जा रहा है। न सत्य बोला जा रहा है और न किया जा रहा है। सोच कर्म पर सवार होकर सत्य की तरफ बढ़ सकता है, अन्यथा हमेशा असत्य की तरफ लुढ़कता रहता है। गांधीजी का एक नास्तिक से पाला पड़ गया। पहले तो वे उस

पर बुरी तरह बिगड़े, पर जब देखा कि वह सोचता है, सोचे हुए पर अमल करने लगता है, तब खुश हुए। उनकी तसल्ली हो गयी। वेफिक्र होकर बोले : "तुम नास्तिक हो या आस्तिक, इससे मुझे कोई सरोकार नहीं। तुम सोचते हो, उस पर अमल करते हो। तुम्हें सत्य मिलकर रहेगा। हो सकता है, उन सैकड़ों आस्तिकों से पहले तुम सत्य परमात्मा को ढूढ निकालो। जो आस्तिक बने परमात्मा के बारे मे सोचते ही सोचते हैं, करते कुछ नहीं, उनको शायद परमात्मा कई जन्म हाथ न आये।" आदर्श युग मे सबसे बड़ा नफा यही होगा कि सोच और काम मे इतना व्यवधान होगा, जितना दियासलाई रगड़ने और प्रकाश होने मे। उस युग मे लोग कमल-भक्षी नहीं, कर्म-भक्षी होंगे।

आत्मा : ज्ञान-कर्ममय

विचार में आनन्द आता है, पर उसका अनुभव गहरा नहीं होता। आत्मा को छूता है, आत्मा मे रम नहीं पाता। आत्मा कोरा ज्ञान का पुञ्ज नहीं, वह ज्ञान-कर्म का मिश्रण है। किसी तरह अलग नहीं किया जा सकता। अगर किसी तरह अलग किया जा सके, तो फिर न ज्ञान रहेगा, न कर्म और न आत्मा! पानी की दो गैस अलग-अलग कर लेने से तो पानी ही नष्ट होता है, दोनो गैस तो बनी रहती हैं। पर ज्ञान-कर्म से अलग हो मानव का सर्वनाश हो जायगा। जो आत्मा ज्ञान-कर्ममय है, वह सोच-ज्ञान से आनन्द कैसे मान सकता है? उसे तो दो मे ही आनन्द आयेगा। ज्ञानशून्य कर्म बनता नहीं। अगर बनता, तो आत्मा उसका आनन्द न ले सकता।

आदर्श युग ज्ञान-कर्ममय होगा। इसलिए आनन्द होगा। ●

धर्म : विचार और व्यवहार : ७ :

आदमी भी अपना धर्म न जान पाया

धर्म भले 'धृ' धातु से बना हो, भले ही उसके माने धारण करना या सँभाले रखना हो, भले ही अंग्रेजी का 'रिलीजन' शब्द इससे मिलता-जुलता माना हो, पर शुरू में 'धर्म' शब्द 'स्वभाव' के अर्थ मे काम आया। जैसे, आग का धर्म जलाना। प्रकृति की चीजों को देखकर आदमी के मन में इच्छा होना स्वाभाविक था कि आदमी का धर्म क्या है? यह जानना वेहद कठिन, आज भी कठिन और न जाने, कवतक कठिन वना रहेगा। 'आदमी का धर्म आदमीयत है' यह कहना टालमटोल करना है। इसके बाद पूछा जायगा, 'आदमीयत क्या?' उसका जवाब भी ऐसा ही वनावटी होगा, जैसा पहला था।

आदमी किस चीज का वना है, इस पर अनेक मत हैं। सतों का कहना है यह पाँच तत्त्वों का पुतला है, यानी आग, पानी, हवा, मिट्टी और आकाश इन सब तत्त्वों के धर्म न्यारे। ये सब आदमी के देह मे पाये जाते हैं। इन सबसे मिलकर अगर किसी धर्म की कल्पना की जाय, तो वह किसी काम की चीज न होगी। शायद इतनी मदद कर जायँ कि मनुष्य स्वभाव के उतार-चढाव का ज्ञान करा दे, स्वभाव का ज्ञान नहीं करा सकते।

कुछ ऋषियों का कहना है, देह उस आत्मा का जामा है, जो इसके अदर है। आत्मा का गुण है, जानना। आदमी का

धर्म है, जानना और देखना। पर आदमी देखने-जानने के सिवा कुछ करता भी है! ऋषि का कहना है: 'करता वह नहीं, वह तो ज्ञाता और द्रष्टा है। करती है देह, जो आत्मा नहीं।'

ऋषि हमें उलझन में डाल देते हैं। हम आदमी को करते देखते हैं, फल भोगते देखते हैं। फिर उसे केवल ज्ञाता या द्रष्टा कैसे मान लें?

कुछ का कहना है आदमी को किसी और शक्ति ने बनाया है। बनाकर काम करने के लिए आजाद छोड़ दिया—जो जी में आये करे। लेकिन फल भोगने के लिए परतंत्र बना दिया। आग में कूदेगा, तो जलना पड़ेगा। पानी में कूदेगा, तो डूब जायगा। ज्यादा खा लेगा, तो पेट के दर्द हो ही जायगा। यह नहीं हो सकता कि वह आग में कूदे और जले नहीं। आदमी का धर्म जानने की कोशिश खूब की गयी, पर ढंग की कोई बात तय न हो पायी। आदमी अपना धर्म जान न सका, जानने की कोशिश में तरह-तरह के धर्म खड़े हो गये। धर्मों के कर्म-कांड खड़े हो गये, रहन-सहन के कायदे बन गये, आदमी उन्हींको अपना धर्म मानने लगा। "आदमी अब क्या है" यह जानने की कोशिश छोड़ दी।

आदमी दूसरों का धर्म जानने में लगा

जब आदमी अपना धर्म न जान पाया, तब दूसरों का धर्म जानने की कोशिश में लग गया। उसने पशु-पक्षी, ईंट-पत्थर, सबके धर्म जाने और उन सबसे खूब फायदा उठाया। उनका धर्म जानकर उसने सिर्फ पशुओं पर सवारी करनी नहीं सीखी, अपने साथियों पर भी सवारी कसने की कला सीख ली। अब वह दिन-रात इसी फिक्र में है कि अपने भाइयों पर किस तरह

सवारी गाँठे। पशु तो अब कान-पूँछ हिलाये बिना उसकी सेवा में खड़े रहते हैं। उसने ऐसी मशीनें भी तैयार कर ली हैं, जो उन पशुओं का थोड़ा-बहुत काम दे जाती हैं, इसलिए उनसे उसे बहुत कम काम रह गया है। उसका सारा ध्यान अब इसी तरफ है कि वह किस तरह सारी दुनिया को अपने काबू में कर ले और दुनिया के सब आदमी उसकी सवारी में काम आने लगें। आदमी पशु की तरह भोला-भाला नहीं, वह अपने साथी जितना चालाक है। घोड़े ने शुरू-शुरू में सवार को अपनी पीठ पर से उछाल फेंका था, पर आज वह उसे सँभाले रखने में अपना बड़प्पन मानता है, आदमी शुरू-शुरू में जरा भड़कता है, पर जल्दी सवारी देने का आदि हो जाता है।

आदमी की ऊँची उड़ान

आदमी ने इधर यह किया, उधर ऊँची उडान ली, जमीन-आसमान के कुलावे मिला डाले। किसीने मेह बरसानेवाला ढूँढ निकाला, किसीने हवा चलानेवाला, तो किसीने दिन और रात बनानेवाला। सब देवताओं की तस्वीरें तैयार कर दीं। उनके हाथ में तरह-तरह के औजार दे दिये। औजार वे ही थे, जो कल्पना से तैयार किये थे। वे उसके अपने हथियारों से मिलते-जुलते थे। ये सब धर्म के शुरू के विचार कहलाते हैं। ये विचार तफसील से हर धर्म की पुरानी किताब में मिलते हैं। किताबें भले कल की हों, विचार बेहद पुराने हैं। आज का आदमी पुराने आदमी का विचार सुन कर अचरज में पड जाता है। आज उससे कोई पूछे, चाँद में काला-काला क्या है, तो वह सोचता रह जाय। बरसों ठीक जवाब न दे सके। आज जिम्मेदारी जो बेहद बढ गयी है, उसी हिसाब से जानकारी

भी बढ़ गयी है। जानकार जानकार को ऊटपटांग जवाब नहीं दे सकता, मूर्ख मूर्ख को दे सकता है। पहले जवाब देने में क्या लगता था? बच्चे ने नानी से पूछा : 'चाँद मे काला-काला क्या है?' उसने जवाब दे दिया 'खरगोश बैठा है।' किसीने जवाब दे दिया : 'बुढ़िया बैठी चर्खा कात रही है।' उन दिनों न कोई जिम्मेदारी थी, न ज्यादा जानकारी। एक का कहा हुआ दूसरे ने ठीक मान लिया। लाल बुझक्कड़ को आप मूरख कह सकते हैं, उसके गाँववाले तो उसे सर्वज्ञ समझते थे। बस, धर्म के पुराने विचार एकदम आजाद थे, पर थे सच्चे। उन दिनों आदमी घोड़े का मुँह इस तरह बनाता था, जैसे आज वह अंग्रेजी का सात बनाता है। आसमान मे जब उसने तीन तारे देखे, तो उसका नाम घोड़ी रख दिया। तीन तारों को कल्पित रेखा से मिला दिया, घोड़ी का मुँह बन गया। आकाश के सारे नक्षत्र उसने इसी तरह नामों से अलंकृत कर दिये, अपने लिए आसानी कर ली।

आदमी की जैसे-जैसे जानकारी बढ़ी, वैसे-वैसे उसकी कल्पनाओं ने वह रूप लेना शुरू किया, जो उसकी जानकारी पर ठीक-ठीक उतर सके। जमाना आगे बढ़ता रहा। समय-समय बदलाव होते रहे। आदमी शक्ति का भूखा हो बैठा। उसने यह चाहा कि जो उसने सोचा है; उसके खिलाफ कोई न सोचे। कोई सोचेगा, तो वह उसे मारेगा। इसका नतीजा हुआ, नये-नये खोजियों की मौत! यह आज तक जारी है, न जाने कब तक जारी रहेगी।

धर्म का आज का रूप डरावना

धर्म ने जो आज रूप ले रखा है, वह डरावना है। जिस

तरह बच्चा चेहरा बाँधकर अपने साथियों को डराता फिरता है, वैसे आज का आदमी धर्म का चेहरा बाँधकर लोगों को डराता फिरता है। जिस तरह बच्चे के चेहरे से जानकार नहीं डरते, वैसे ही आज के धर्म के ठेकेदारों से जानकार नहीं डरते।

जानकारों की संख्या कम होने से डर का राज्य दूर-दूर तक फैला है। डर मन को आजाद नहीं होने देता। गुलाम मन सत्य की तरफ दौड़ नहीं सकता। आज की सबसे बड़ी जरूरत है, लोगों का डर दूर करना। डर दूर करने का महत्त्व सभी ऋषियों ने माना है। आज सब उसको अच्छा काम समझते हैं। पर यह काम है मुश्किल। लोगों के दिल से डर आसानी से नहीं भागता। वह घर में आये पत्ती की तरह नहीं, जो फुर्र से उड़ जाय। न वह कुत्ता जैसा है, जो दुरदुराने से भाग जाय। वह एक तरह की कमजोरी है। कमजोरी ज्ञान से दूर हो सकती है। जानकारी के बिना किसीको अगर आप निर्भय बना देंगे, तो नतीजा यह होगा कि वह दस के लिए शेर बन जायगा, पर एक के लिए गीदड़ बना रहेगा। अगर उसे आप जानकारी देकर निर्भय बनाते हैं, तब उसमें समानता जाग सकती है। तब वह दूसरों का गुलाम होने से बच सकता है।

आज लोगों की जानकारी बढ़ गयी है, आज के धर्म के सिद्धांत उस जानकारी की लीक से जरा इधर-उधर नहीं हो सकते, जरा झुके कि गिरे। आज का धर्म भले ही कल के धर्म की खिल्ली उड़ाता हो, पर यह खूब समझ ले कि वह उसकी खिल्ली उड़ाकर अपनी खिल्ली उड़ाये जाने की सामग्री जुटा रहा है। आज के धर्म की सारी कल्पनाएँ वही-की-वही हैं, जो हमेशा से चली आ रही हैं। हाँ, उनका रूप थोड़ा 'धुला-धुला' है। पुराना ईश्वर कहीं तख्त पर बैठकर राज करता था,

आज का ईश्वर सब जगह अपनी देह फैलाकर राज करता है। पर यह मान्यता कि इस जगत् के पीछे कोई ज्ञानधारी शक्ति है, ज्यों-की-त्यों बनी है।

भावी धर्म का रूप

भावी धर्म जो रूप लेगा, उसमें उस समय की जानकारी शामिल रहेगी। उस जानकारी के आधार पर आदमी ने जो आजादी या आजादियाँ हासिल की होंगी, वे सभी उसमें शामिल रहेंगी। ऊपर कह चुके हैं, धर्म के मामले में हमें परीक्षा-प्रधानी बनना चाहिए, न कि श्रद्धा-प्रधानी। पर न इस पर अमल बीते कल हो पाया, न आज हो रहा है। भावी धर्म इसी पर जोर देगा। यह अकेली बात लोगों के दिल से सब झूठे भय दूर कर देगी। भय हटा कि ज्ञान का प्रकाश आ मौजूद होगा। फिर धार्मिक लोग उसी सत्य के आदर्श की तरफ दौड़ना शुरू कर देंगे, जिसकी बात पहले कही जा चुकी है। धर्म और सत्य एकार्थवाची बन जायँगे। यही हाल धर्म और परमात्मा का होगा। परमात्मा और आत्मा एक होकर रहेंगे। परमात्मा और आत्मा के एक होने की बात सोची तो पहले भी जा चुकी है, कही भी जा चुकी है, पर उस पर आज तक कभी अमल नहीं हुआ। भावी धर्म का काम होगा कि वह लोगों को उस पर अमल करने के लिए तैयार कर दे।

पुराने धर्मों में व्यवहार-क्रान्ति जरूरी

धर्म-विचार अपने दो रूपों में डरावना नहीं होता। पहला रूप दूसरों के लिए निराकार होता है, जो जिसके जी में आये विचारा करे, किसीको उससे क्या मतलब? किसीको उससे न दुःख पहुँचता है, न सुख। दूसरा रूप है, शब्दों में आना।

वह रूप जनता के लिए इतना डरावना नहीं, जितना सरकार के लिए। उसको भी डरावना कैसे कहा जाय? अच्छी सरकारें विचार-प्रकाशन की स्वतंत्रता देती हैं। धर्म-विचार किसीको कितने ही डरावने क्यों न लगें, जनता के भले के लिए होते हैं। उनके डरावनेपन की शिकायत कम की जाती है। विचार शब्दों में आकर नहीं रह जाते, व्यवहार में आते हैं। व्यवहार में आने से पुराने धर्म-विचारों पर खड़ा व्यवहार डगमगाने लगता है, झूमने लगता है—'अब गिरा, अब गिरा' होने लगता है। किसी अंश में गिर भी जाता है। भला इस कृति को कोई आसानी से कैसे बरदाश्त कर सकता है? समझदार से समझदार उस डॉक्टर पर हाथ उठा बैठेगा, जिसने यह कहे बिना कि वह डॉक्टर है और उसका फोड़ा चीरने आया है, उसका फोड़ा चिर दिया हो। फोड़ा चीरना और पीप निकाल फेकना अच्छा काम है। उस पर जिसकी तैयारी नहीं, वह बुरा मान बैठता है। पुराने धर्मों मे व्यवहार-क्रांति जरूरी है, उसके बिना समाज की भलाई नहीं हो सकती। पर जो समाज-क्रांति के लिए तैयार नहीं, वह उस क्रांति से घबरायगा ही।

धर्म-व्यवहार धर्म की जान नहीं, देह

धर्म-व्यवहार धर्म की जान नहीं, धर्म की देह है। देह एक क्षण बदलाव के बिना जीवित नहीं रह सकती। धर्म-व्यवहार मे क्षण-क्षण जो बदलाव होते हैं, उन्हें धर्म ऐसे बरदाश्त कर लेती है, जैसे आदमी की देह तरह-तरह के बदलावों को बरदाश्त करती रहती है। पर जिस तरह आदमी की देह चीर-फाड़ जैसे बड़े बदलाव से घबराती है, वैसे ही धर्म सामाजिक रिवाजों के उलट-फेर से घबराता है और अगर कोई वैसे बदलाव करने की

कोशिश करे, तो उससे बिगड़ उठता है। आये दिन हर धर्म को इसी तरह की आफत का सामना करना पड़ता है।

धर्म-व्यवहार में बदलाव जरूरी

समाज की अवस्था-व्यवस्था में बदलाव जरूरी है। मुनासिब वक्त पर न हो, तो समाज को नुकसान पहुँचे बगैर न रहेगा। कोई बंगाली उत्तरी चीन में सिर नंगा रखने पर अड़ जाय, तो जुकाम मोल ले बैठेगा और फिर भी अड़ा रहे, तो किसी बडी बोमारी में फँसकर जान से हाथ धो बैठेगा। धर्मी समाज का दल किन्हीं कारणों से गरम देश छोड़कर ठडे देश मे पहुँच जाय और अपने रिवाजो को न बदले, तो नष्ट होने से कैसे बचेगा? समाज का कोई-न-कोई समझदार जरूर बदलाव की आवाज उठायेगा। अगर बदलाव समाज के विचारों से टकरायेगा, तो उसको नये विचारों को जन्म देना पड़ेगा। यही कहलाने लगेगा, नया धर्म।

दुनिया का कोई धर्म ऐसा नहीं, जिसने अपना फैलाव ऐसे लोगों में किया हो, जिनकी अपनी कोई धार्मिक मान्यता न रही हो। हर धर्म किसी-न-किसी धर्म के माननेवालों में जनमा है। आदमी का बच्चा आदमी से जनमेगा। आदमी की कल्पना कि उसे भगवान् ने जवान बनाकर दुनिया के पर्दे पर फेंक दिया, मन को ठीक न लगनेवाली कल्पना है। आदि-धर्म की कोई ऐसी कल्पना कर लेना मन को न लगनेवाली कल्पना होगी। आदि-धर्म जैसी बात बनती नहीं। कोई-न-कोई धर्म भले आदि हो, धर्म-धारा अनादि है।

आज दुनिया में ऐसे आदमी है, जिनका सभ्य दुनिया से कोई रिश्ता नहीं; सभ्य दुनिया से रिश्ता करने की वे सोचते

भी नहीं। इस मामले में वे इतने अयोग्य हैं कि सोच सकते नहीं। हाँ, सभ्य-जगत् के इने-गिने आदमी कभी उनके पास पहुँच जाते हैं, उनका हाल हम तक पहुँचा देते हैं। ऐसे लोग भी अपनी कुछ मान्यताएँ रखते हैं, वही उनका धर्म है। उनका हर व्यवहार धर्म-व्यवहार है, हर व्यवहार के पीछे कोई-न-कोई धार्मिक विचार है। उत्तरीय ध्रुव के पास बसनेवाली 'एस्कीमो' जाति का जब यह हाल है, तब कैसे कहा जा सकता है कि धर्म आदि है? एस्कीमो में कोई नयी विचार-धारा लेकर अगर कोई एस्कीमो खड़ा हो जाय, तो क्या वह यह कहने का दावा कर सकता है कि वह जो विचार अपने समाज के सामने रख रहा है, वह आदि-विचार है? उसके विचारों को किसीसे टकराना पड़ेगा। विचार विचार के सिवा और किससे टकरा सकते हैं? इस परंपरा से धर्म-परंपरा अनादि माननी पड़ेगी।

धर्म-व्यवहार में हर समय बदलाव हुए हैं

काम चलाने के लिए मान लेते हैं, शुरू का आदमी धर्म-विचार नहीं रखता था। उसने प्रकृति के कामों को देख कुछ विचार बनाये, उसके आधार पर व्यवहार गढ़े। ये व्यवहार कुछ अपने-आप बदलते रहे, क्योंकि बदलाव व्यवहार का जीवन है। पर जब पुराने समाज को एक जगह से दूसरी जगह जाना पड़ा, एक ऋतु से दूसरी ऋतु मे प्रवेश करना पड़ा, एक हालत से दूसरी हालत में जाना पड़ा, तब व्यवहारों में उलट-फेर करने की जरूरत आ पड़ी। उलट-फेर के समय सब घबरा उठे। उन्हें ऐसा मालूम होने लगा, मानो उलट-फेर करने से उनका धर्म नष्ट हो जायगा। धर्म नष्ट होने से समाज नष्ट हो

जायगा। ऐसी हालत में कोई समझदार उठा, उसने हिम्मत करके व्यवस्था दे डाली, बदलो सब व्यवहारों को। कुछ ने विरोध किया, बहुतों ने साथ दिया। धर्म-विचार ज्यों-के-त्यों बने रहे। व्यवहार परिस्थिति के अनुसार बदल गया। पर जब बहुतों ने विरोध किया, कुछ ने साथ दिया, तब विचार बदलने पड़े। उन विचारों को समाज में फैलाने के बाद व्यवहार बदलने के लिए रास्ता साफ करना पड़ा। नये व्यवहारों ने नये धर्म का नाम ले लिया। तीनों वेद तरह-तरह के विचारों से भरे पड़े हैं। उनसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मण-ग्रंथ तरह-तरह के व्यवहारों से भरे पड़े हैं। हरएक उपनिषद् एक नयी विचार-धारा लिये है। छहों दर्शन एक-दूसरे से अलग हैं। आज सब उपनिषद्, सब दर्शन-ग्रंथ, सब ब्राह्मण-ग्रंथ, सब संहिताएँ मिलकर भले 'वेद' नाम पाये हुए हों, भले ही उन सबको माननेवाले एकधर्मी और एक-समाजी अपने को समझते हों; पर एक समय था, जब ये सब विचार-धाराएँ अलग-अलग धर्म का रूप लिये थीं। आपस में ऐसी ही लड़ती-झगड़ती थीं, जैसे आज के धर्म लड़ते हैं। इसमें शक नहीं, उन सब धाराओं का मेल बैठाने की बड़ी-बड़ी कोशिशें की गयीं, वैसी कोशिशें आज जारी हैं।

समाज-व्यवस्था में उलट-फेर

शहर में रहनेवाली माँ जब बच्चे को बाजार ले जाती है, तो वह उसे जगह-बे-जगह पेशाब करने से रोकती है, पेशाब-घर तक ले जाती है। अगर वह दूर हुआ, तो नाली में बैठा देती है। ऐसा वह इसलिए करती है कि बच्चा वह व्यवहार सीख ले, जो उसे बड़ा होकर करना पड़ेगा। अगर वह ऐसा नहीं करेगा, तो समाज की नजरों में नीचा समझा जायगा। समाज-

व्यवस्था उसे दंड देगी। समाज का भय उस माँ को ऐसा करने के लिए मजबूर करता है। ठीक इसी तरह शुरू के आदमी ने ईश्वर को राजा के रूप में माना, जो दिखाई तो नहीं देता, पर सारे जगत् का शासन करता है। जब ऐसा राजा उसके दिल में बैठ गया, तो उसके आधार पर उसने समाज में रहने के व्यवहार तैयार कर लिये। परलोक के राजा की तरह इस लोक का राजा बना दिया। परलोक का राजा अगर ऐसे कामों की सजा देता है, जो नजर से परे हैं, तो इस लोक का राजा ऐसे कामों की सजा देता है, जो आँखों के सामने हैं। अच्छे विचारों का बदला अगर ईश्वर से मिलता है, तो अच्छे कामों का बदला राजा से मिल जाता है। विचारों के आधार पर पूरी-पूरी व्यवहार-व्यवस्था हो गयी। समाज की गाड़ी चल पड़ी।

एक दिन आया, जब एक आदमी ने खड़े होकर कह दिया कि जगत् का कर्ता ईश्वर नहीं। 'ईश्वर ही नहीं' यह विचार जब जड़ पकड़ गया, तो राजा की भी जड़ हिल गयी। समाज का सारा व्यवहार बदल गया। क्या राज्य-व्यवस्था, क्या समाज-व्यवस्था, सभी व्यवस्थाओं में बड़े-बड़े बदलाव और बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ होती रही हैं। आज जो व्यवस्था हमारे सामने है, वह पुराने समय से कितनी ही अनोखी क्यों न हो, कितनी ही बेमेल क्यों न जँचती हो, पर जुड़ी हुई है उसी व्यवस्था से, जो अब से हजारों बरस पहले हो गयी थी। फल, फूल, पत्ते जड़ से कहाँ मेल खाते हैं, पर सबके अंदर रस वही होता है, जो जड़ में मौजूद है। उसी रस का नाम धर्म है और वह अनादि है।

धर्म अनादि और व्यवहार परिवर्तनशील

जिसकी समझ में यह बात आ जाती है कि धर्म अनादि

है और व्यवहार हमेशा बदलता रहता है, वह जिस तरह मामूली बदलाव के लिए तैयार रहता है, उसी तरह क्रान्ति के लिए भी तैयार रहता है। किसी समाज में ऐसे आदमियों की संख्या अगर ज्यादा हुई, तो उस समाज में क्रान्ति के समय कोई गड़बड़ी हुए बिना नहीं रहती।

आज के किसी व्यवहार को लेकर विचार करने बैठ जाइये, अगर आपका मन पक्षपातरहित है, तो जल्दी आप खुद ही यह ढूंढ़ निकालेंगे कि उस व्यवहार के अंदर वह रस ज्यों-का-त्यों वह रहा है, जिसकी धार हजारों बरस दूर से बहती चली आ रही है।

लोगों का कहना है कि इतिहास मनुष्य को ज्ञानी बनाता है। इसका अर्थ है, मनुष्य इतिहास के जरिये व्यवहारों के उलट-फेर को समझ लेता है। वह जान जाता है कि व्यवहार बदलने को चीज है, बदलते आये है, बदल रहे है और उनका बदलते रहना जरूरी है। यह जानकर आदमी ज्ञानी न बनेगा, तो और क्या बनेगा ?

जिस एक रिवाज को लेकर कोई समाज विप्लव खड़ा करता है, वह रिवाज ज्यों-का-त्यो, कहीं-न-कहीं देश के कोने मे मिल जायगा।

हिन्दू-समाज एक भी रिवाज ऐसा पेश नहीं कर सकता, जिसे सारे हिन्दू मानते हों। यही हाल मुसलमानों का है। जिस चोटी रखने पर हिन्दू जोर देते है, जिसके काट लेने से हिन्दू-धर्म नष्ट हो जाता है, वह चोटी न छोटे बच्चे के पास है, न संन्यासी के पास, न औरतों के पास, न बंगालियो और सिक्खों के पास। अगर चोटी हिन्दू होने की निशानी है, तो सब चीनी-मुसलमान हिन्दू हुए, क्योंकि वे चोटी रखते हैं।

चोटी जैसा ही हाल हिन्दुओं के सारे रिवाजों का है। रही औरतो के वाल रखने की बात, इसका धर्म से सम्बन्ध नहीं। इसमे दुनियाभर की औरतें एक हैं, फिर वे किसी धर्म की क्यों न हो। औरतें वाल रखती हैं, सुन्दरता में बढ़वारी के लिए। ऐसी वात न होती, तो विधवाओं को बाल कटाने की व्यवस्था न दी गयी होती।

चोटी और वालो की बात हमने इसलिए कह दी कि हर धर्म के व्यवहार जगह बदलने पर बदले हैं, समय बदलने पर वदले हैं, विचार वदलने पर वदले हैं और कोई नया दल समाज मे आ मिलने पर वदले हैं।

धर्म का सम्बन्ध विचारमात्र से

नयी विचार-धारा से जो व्यवहार बदलता है, उस बदलाव के वाद जो नये रिवाज चलते हैं, वे नये धर्म का रूप ले लेते हैं। इन रिवाजो को लेकर नया धर्म दुनिया मे अपनी जगह बनाता है। फिर वह उन्हींको सब कुछ न समझ बैठे, तो क्या करे?

न जाने, आज का चीन धर्म के मामले मे इन रिवाजो से ऊपर कैसे उठ गया। चीन मे धर्म का सम्बन्ध विचारो से है, उन विचारो का प्रकाशन किया जा सकता है। पर व्यवहार पर उनकी वजह से कोई असर नहीं पड़ने दिया जाता। कोई यह न समझे, वहाँ तरह-तरह के रिवाज नहीं हैं। रिवाज हैं, पर उनका धर्म से सम्बन्ध न होने से वे आपस में टकराते नहीं। हाँ, राज्य-व्यवस्था के आधार पर जो विचार बने हैं, उनमें टकराने की संभावना मौजूद है। हिन्दुस्तान मे जिस तरह दो धर्म मुश्किल से मिलकर रहते हैं, वैसे ही चीन मे दो राज्य-व्यवस्था के व्यवहार मुश्किल से मिलकर रह सकते हैं।

चीन की देखा-देखी, कुछ सचाई की तरफ बढ़वारी और कुछ ठीक-ठीक जानकारी के कारण, आजकल अपने देश में भी यह कोशिश हो रही है कि धर्मों का सम्बन्ध विचारमात्र से रह जाय—व्यवहार की वजह से रोटी-बेटी के मामले में कोई भेद-भाव न होने पाये। पर इस विचार के लोग इने-गिने हैं। अमल करनेवालों की और भी कमी है।

भावी व्यवहार यह होकर रहेगा कि रिवाजों का कोई संबंध धर्म से न रह सके। यह विचार-धारा बहुत तेजी से फैल रही है। इसके प्रकाशन में रोक-टोक भी नहीं, अमल की रोक-टोक भी नहीं। अमल नहीं हो रहा है, इसकी किसीको चिन्ता भी नहीं। पर यह विचार-धारा फैलकर कब ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ेगी, कोई नहीं जानता। वह दिन बहुत बड़ी क्रान्ति का दिन होगा। उसके बिना शाश्वत धर्म की स्थापना नहीं हो सकती। उसकी स्थापना के बिना 'हिन्दुस्तानी नेशन' नाम की चीज कभी अस्तित्व में नहीं आ सकती। मुसलमान हिन्दुओं से घृणा करके अपने भाइयों से प्यार नहीं कर सकता। हिन्दू मुसलमानों से घृणा करके हिन्दुओं को प्यार नहीं कर सकता। शराबी, नशे में, गैरों पर वार करता है, अपनों पर भी वार करता है। पागल अपने-पराये में भेद नहीं करता, सब पर हाथ उठा बैठता है। धर्म का पागल फिर कैसे भेद करेगा? पाकिस्तान बन गया। वहाँ एक तरह से एक धर्मवाले रह गये। इसलाम-धर्म काफी पुराना है, चौदह सौ बरस में उसमें अनेक विचार-धाराएँ बह चुकीं। व्यवहार खूब बदल चुका। इसलाम-धर्म की दो जमातों में एक-से रिवाज नहीं। जिस बात की खातिर पाकिस्तान बना, वह बात पाकिस्तान में आज मौजूद है। ऐसा न होता, तो हाल में जो झगड़ा कादियानियों को लेकर खड़ा हुआ, वह न हुआ

होता। क्या यह इस बात का सबूत नहीं कि मुसलमानों ने हिन्दुओं से घृणा करके घृणा को अपने अन्दर जगह दे दी। वह अब हिन्दुओं पर नहीं, मुसलमानों पर निकलेगी। कादियानी निकाल बाहर किये जायँ, तो शिया-सुन्नियों में ठनेगी। इस तरह यह सिलसिला बराबर कायम रहेगा। भारत मुसलमानों से घृणा के आधार पर नहीं बना, पर इसमें पहले से विचारों के आधार पर जो धर्म-सगठन मौजूद हैं, उनमें वैसी ही घृणा मौजूद है, जैसी पाकिस्तान में है। इसीका कौन ठिकाना, इसमें कब क्या हो जाय? जिन घरों में गाली देने का रिवाज है, वहाँ गाली से पराये तो बचते ही नहीं, अपने भी नहीं बच पाते। घृणा गाली से कहीं तेज होती है, वह उलटा-सीधा सब तरफ वार कर बैठती है, उससे बचना ही चाहिए।

धर्म का भावी व्यवहार यह करके रहेगा कि वह रिवाजों की परवाह किये बिना धार्मिक सगठनों को खतम कर दे। अच्छा हो, सगठन ग्रामवार या नगरवार बनाये जायँ। सूबेवार सगठन भी बन सकते हैं। भाषावार सगठन खतरनाक सिद्ध होंगे। यह कहकर हम जरा धर्म-व्यवहार की बात से हट रहे हैं। इसे यहीं छोड़कर यह कहना चाहते हैं कि धर्म का भावी व्यवहार धर्म-संगठनों को खतम करने पर जोर देगा। फिर रीति-रिवाज, जो इस समय बेहद दुःखदायी साबित हो रहे हैं, बड़े काम के बन बैठेंगे, हमें एक करने में मदद देंगे, 'नेशन' बनने में सीमेंट का काम करेंगे। ●

हर खोटा काम धर्माचार बन बैठा

झूठ बोलना, किसीको सताना या जान लेना, चोरी करना, परायी औरत को बुरी नजर से देखना या काम-तृप्ति का साधन बनाना और माया-मोह मे पड़ना या धन-संग्रह करना—ये सब अधर्म माने गये हैं। पर ये सब-के-सब खूब व्यवहार में हैं और धर्माचार बने हुए हैं। इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि दुनिया का कौन खोटा काम बचा होगा, जो धर्माचार के रूप में न मिल सके।

महापुरुषों की जीवन-कथाएँ सत्य से दूर

कहते हैं, धर्म सत्य पर टिका है, सत्य नारायण है। सत्यनारायण की कथा होती है, पर उस कथा की सत्यता की जाँच की जाय, तो दाँतोतले अंगुली दबाकर रह जाना होगा। सत्यनारायण की कथा ही क्यों, सब पुराणों का यही हाल है। सब महापुरुषो की जीवन-कथाओ का सत्य से इतना दूर का नाता है, जितना जमीन का आसमान से। सत्य. जो सबसे पहला और सबसे मुख्य धर्म का खम्भा है, जब उसका यह हाल है, तब और खम्भों का क्या हाल होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है।

संस्कारों में असत्य भावनाएँ

धर्म के ठेकेदारो ने एक दिन ऐसा नियत कर रखा है, जिस दिन झूठ बोलना चाहिए, दूसरों को धोखा देना चाहिए। जुआ

खेलने के त्योहार का कितनी उत्सुकता से इन्तजार किया जाता है, इसका सबको पता है। विवाह धार्मिक संस्कार माना गया है, उसमें कितनी ही रूढियाँ ऐसी हैं, जिनमें से अगर झूठ निकाल बाहर कर दिया जाय, तो उन रूढियों का कोई अर्थ ही न रह जाय। रूढ़ियाँ अपने-आप चल बसें। विवाह-संस्कार ही क्या, सारे संस्कार तरह-तरह की असत्य भावनाओं से भरे पडे हैं, असत्य-व्यवहार और असत्य-संस्कारों के खिलाफ सन्तों को बडी-बडी आवाज उठानी पड़ी, पर नतीजा कभी तसल्ली-बख्श न हो पाया।

सत्य की आवाज लगानेवालों की हालत !

हर धर्म में अनेक असत्य-व्यवहार जारी हैं। उनके खिलाफ जब आवाज उठायी जाती है, तो धर्मवाले शोर कर उठते हैं कि उनके धर्म पर आघात किया जा रहा है। सरकार बीच में चट आड़े आ जाती है। मुकदमे चलते हैं। अदालतें फैसला देती हैं कि धर्म पर आघात हुआ। लोग सजाएँ पाते हैं, फाँसी पर लटका दिये जाते हैं। यह सब होता है इसलिए कि शोर मचानेवालों ने सत्य का प्रचार किया होता है, असत्य के खिलाफ आवाज उठायी होती है। गांधीजी अदालत की भेंट न चढे, और न एक व्यक्ति की पागल-भावना की ही भेंट चढे। वे भेंट चढ़े एक बडी विचारधारा के, जिस धारा में न जाने कितने आदमी डूबे हुए थे। वह धारा आज तक बह रही है। कोई उसकी गति बढ़ी हुई न माने, पर घटती हुई भी नहीं कह सकता। मसीह के साथ तो सरकारी अदालत ने सीधे-सीधे वह व्यवहार किया था, जो झूठों के साथ किया जाता है। पर क्या मसीह अधर्मी थे और क्या वे धर्म पर प्रहार

कर रहे थे ? क्या उन्होंने सत्य के खिलाफ कुछ कहा था ? जवाब मिलेगा : 'यह सब नहीं किया था।' फिर क्या अदालत का जज झूठा था, बुद्धू था, बेईमान था या क्या सारी जनता और सरकार अधर्मी थी, जो ऐसा काम कर बैठी ? आज आप सबको अधर्मी कह सकते हैं, पर उस दिन आपने मसीह को क्रूस पर चढ़ते देखकर आनन्द ही माना होता, क्योंकि जिस झूठे व्यवहार के खिलाफ मसीह ने आवाज उठायी थी, वह उन दिनों का धर्म बना हुआ था।

मिथ्या और असत्य-व्यवहार में भेद

असलियत सामने रखकर देखा जाय, तो हर व्यवहार असत्य व्यवहार होता है। व्यवहार ही असत्य होता है, पर व्यवहार के बिना दुनिया एक कदम आगे नहीं चल सकती। दुनिया सत्यासत्य पर टिकी हुई है, पुरुष-माया का मेल है। माया को सबने झूठा माना है। निश्चय और व्यवहार जीवन के दो पहलू हैं, दोनों जरूरी हैं। यह सब ठीक, पर हर व्यवहार की कोई सीमा तो होनी ही चाहिए! व्यवहार सीमा लाँघकर असत्य से झूठ की कोटि में आ जाता है। असत्य-व्यवहार और मिथ्या-व्यवहार में जमीन-आसमान का अन्तर है। मिथ्या-व्यवहार छोड़े जा सकते है। उनके छोड़ने से दुनिया टिकी रह सकती है। मिथ्या-व्यवहार जीवन के लिए जरूरी नहीं। असत्य-व्यवहार जरूरी हैं। उनके बिना जीवन नहीं टिक सकता। धर्म जिस वक्त मिथ्या-व्यवहारों को बरदाश्त करने लगता है, तब वह धर्म की कोटि से गिर जाता है, पर हर धर्म मे सैकड़ों मिथ्या-व्यवहार धर्म के नाम पर चल रहे हैं और 'धर्माचार' का नाम पाये हैं।

या नहीं ? एक धर्म ने एक ग्रंथ लिख डाला है कि जीव है कहाँ-कहाँ ? उनकी हिंसा किस-किस तरह होती है ? पर आज इस तरह के ग्रंथ की जरूरत है कि आदमी किस-किस तरह मर रहे हैं ? कहाँ-कहाँ मौत से भी ज्यादा सताये जा रहे हैं ? किन-किन पेशों मे उम्र आधी रह जाती है और किनमें चौथाई ? मुश्किल यह है कि जहाँ-जहाँ इस तरह की हिंसा हो रही है, वे सभी हैं धर्माचार। बलिदान के रूप में पशु-हिंसा रोकने की जितनी कोशिश हो रही है, उसका हजारवाँ हिस्सा भी इस ओर कोशिश नहीं हो रही है कि आदमी कहाँ-कहाँ धर्म की वेदी पर बलि हो रहा है।

हिंसा ने धर्माचार बनकर जैसा नग्न-तांडव कर रखा है, वैसा किसी दूसरी बुराई ने नहीं किया। जितनी बेपरवाही इस ओर बढती जा रही है, उतनी किसी और व्रत के साथ नहीं। हिंसा का लक्षण अगर जीवधारी के प्राणों को तकलीफ देना है, तब तो न जाने कितनी हिंसा उन धर्मों में फैली हुई है, जो अपने-आपको अहिंसा के पुजारी मानते हैं। यह कथा भले कपोल-कल्पित हो कि एक गुरु के दो शिष्यों ने अपने गुरुजी की दोनो टाँगे इसलिए तोड़ डालीं कि गुरुजी की एक टाँग दूसरी टाँग पर रखी हुई थी और इस बात को शिष्य बरदाश्त नहीं कर पाये। बस, दोनो शिष्यो ने गुरुजी की दोनों टाँगो को पीस-पीसकर भुरता बना दिया। पर यह बात कपोल-कल्पित नहीं कि एक धर्म के दो पथ एक ही गुरु की मूरत के दो ढगो को लेकर आपस मे सिर-फुडौवल कर बैठते हैं। कभी-कभी एक-दो की जान भी चली जाती है। यह हुई सीधी हिंसा। जो सीधी हिंसा कर सकते हैं, वे मन दुखाने या प्राण सताने की कितनी हिंसा करते होगे,

क्या उसका हिसाब लगाया जा सकता है ? और यह सब है धर्माचार !

हिंसा पापो मे महापाप है। 'पाप' शब्द से कुछ लोगों को चिढ़ है। लीजिये, हम कहे देते हैं, बुराइयों मे हिंसा सबसे बड़ी बुराई है। पर वह तो धर्माचार बनी हुई है। जो भी इस पर आघात करने की कोशिश करेगा, वह धर्म पर आघात करने का गुनाहगार समझा जायगा। अब कहिये, कोई धर्म-प्रचार किस तरह करे ? धर्माचरण जब अधर्माचरण माना जाय और अधर्माचरण धर्माचरण समझ लिया जाय, तब धर्म की गाड़ी आगे किस तरह बढ़े ? यह मामूली बात नहीं, इस पर विचार करने की जरूरत है। इसकी खातिर लोगों का कहना है, भगवान् को दुनिया पर उतरना पड़ता है। यह चाहे निरी कल्पना हो, पर इससे तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि राजाओ ने इस काम की खातिर अपने राजपाट छोड़ दिये, महलो का सुख त्यागा, गृहस्थ का सुख छोड़ा, देह के सब सुख त्यागे, सब इन्द्रियों के स्वाद छोड़े। पर अब भी वे इस तरफ इतनी प्रगति न कर सके, जितनी दुनिया उनसे चाहती थी। पता नहीं, हम वहीं-के-वहीं हैं, बढ़े हैं या पीछे हटे हैं !

चोरी भी धर्माचार !

तीसरी बुराई है चोरी, यह भी बेफिक्री के साथ धर्माचार बनी हुई है। व्यापार करना धर्म है। सब व्यापारियो का कहना है कि झूठ-चोरी के बिना व्यापार नहीं चल सकता। मिल-मालिक इसमें इतना और जोड़ सकते हैं, हिंसा के बिना व्यापार नहीं चल सकता। फौजी जनरल इसमे इतना और जोड़ सकते हैं कि व्यभिचार के बिना काम नहीं चल सकता। पलटन के साथ

वेश्याएँ न हो, तो भला किस तरह काम चले? राजा लोग या राजाओं को हटाकर उनकी जगह बैठनेवाले इसमें इतना और जोड सकते है, परिग्रह के बिना राज-काज नहीं चल सकता। सोने की छतरी के बिना राजा की शान ही क्या? शान नहीं तो हुकूमत की धाक कैसी? जब धाक न रहेगी, तब व्यवस्था खतम हो जायगी। व्यवस्था खतम हो जाने पर अराजकता छा जायगी। प्रजा नष्ट हो जायगी। सक्षेप मे दुनियादारी का काम चलाने के लिए अधर्म बेहद जरूरी है, धर्म हो या न हो। इसी धुन में कुछ लोग 'सेक्यूलर गवर्नमेंट' का तरजुमा कर बैठते हैं, 'धर्महीन सरकार'।

व्यापार में जब लोगों ने सारे अधर्म शामिल कर लिये, तब कहिये, धर्म कहाँ जाकर टिके? दुनिया के सब कामो मे टिकने के लिए धर्म ने जन्म लिया था। वहाँ-वहाँ से उसका बाइकाट हो रहा है, तब वह बेचारा कहाँ जाय? लोग यह क्यो नहीं समझते कि जिन ऋषियो ने राज्य-व्यवस्था गढ़ी, विद्या-घरो को जन्म दिया, व्यापार की नींव डाली, कला-पोषण मे रूह फूँकी, कारीगरी को फैलाया, वे सब सत्यवादी थे, सत्य के पुजारी थे, अहिंसा-व्रतधारी थे, ब्रह्मचारी थे, अनगारी थे, चोरी की जड पर कुठार-प्रहारी थे। वे कहीं यह सोच सकते थे कि उन सब पेशों मे ये सब बुराइयाँ घुस जायँ, जिनसे वे बचे हुए थे, जिनसे बचना वे हरएक के लिए जरूरी समझते थे।

गाधीजी सच्चे आदमी थे। जितने काम उन्होंने सोचे, सबमें ज्यादा-से-ज्यादा सचाई और ज्यादा-से-ज्यादा लोगो का सुख सोचा। कहना यह चाहिए कि सबका सुख सोचकर उन्होंने व्यापार-सस्थाएँ बनायीं, राज्य-सस्थाएँ बनायीं, ज्ञान सस्थाएँ बनायीं, सेवा-सस्थाएँ बनायीं। अब अगर उनमे अधर्माचार घुस बैठे और

आज के धर्म-पंडित उस अधर्माचार को धर्म साबित कर दें, तो इसमें गांधीजी का क्या दोष ? आज तक के सब महापुरुषों ने इन सब संस्थाओं में फैले अधर्माचार को हटाकर धर्माचार को जगह दी। इसलिए यह कहना बेहयाई होगी कि यह काम झूठ, चोरी और अहिंसा के बगैर नहीं चल सकते।

चोरी की सीनाजोरी

चोरी के दो लक्षण कहे गये हैं। एक, मिट्टी-पानी के सिवा बिना दी हुई कोई चीज ले लेना। यह है बहुत पुराना लक्षण ! बीसवीं सदी का गांधीजी का लक्षण है: जरूरत से ज्यादा अपनाना। इन दोनों कसौटियों पर कसकर आज के व्यापार को देख लिया जाय। व्यापार ही क्या, राज्य-संस्था, ज्ञान-संस्था, सेवा-संस्था, सभीको कसकर देख लिया जाय। सब-की-सब पक्की चोर साबित होंगी। यूनिवर्सिटी की बिल्डिंग अठारह घण्टे बेकार पड़ी रहती है। यही हाल कचहरियों, दफ्तरों और सेवा-समितियों के मकानों का है। सबने जरूरत से ज्यादा जमीनें घेर रखी हैं। क्या गांधीजी जोश में आकर यह नहीं कहा करते थे कि अगर हिन्दुस्तान में स्वराज्य हो गया, तो वे लाट साहब के महल को अस्पताल में बदला हुआ देखेंगे ? वे दिल की चुभन के साथ यह बात कहते थे। उन्हें दिखाई देता था कि यह विदेशी लाट विदेशी होने की वजह से जरूरत से ज्यादा जगह घेरे है, अपने देश में वह इतनी जगह नहीं घेरता। चोरी कर रहा है, समझता नहीं है। गांधीजी को उस पर तरस आता था। हो सकता है, आज किसी और को उन पर तरस आये, जो लाट साहब की कोठी का उपयोग कर रहे हैं, उसे उन लोगों से रोक रहे हैं, जिनके लिए वह सचमुच जरूरी है।

चोरी धर्माचार बनी हुई है, पर हिंसा की तरह लोगों के दिल मे गहरी नहीं बैठ पायी। आसानी से कम की जा सकती है, उसी तल पर लायी जा सकती है, जिस तल पर रहने का उसको धर्माचारियों ने अधिकार दिया है। चोरीदेवी ने जो डाकू बनकर वह जगह घेर रखी है, जिसकी वह अधिकारी नहीं है, उससे छीन ली जायगी। वह अपने तल पर रहे, तभी समाज के लिए शुभकारी हो सकती है। नहीं तो समाज-पर्वत में भूकम्प आ जायगा, वह टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जायगा, फिर कोई भी आकर उसको पाँव से ठुकरा सकता है। चोरी की यह सीनाजोरी है कि वह मर्यादा लाँघकर धर्माचार बनी हुई है।

ब्रह्मचर्य की मिट्टी-पलीद

चोरी की तरह 'जारी' धर्माचार का रूप ले बैठी है। आज नियम के अनुसार गृहस्थ-बन्धन में बँधे पति-पत्नी भी इस ढंग से नहीं रहते कि उन्हें यह कहा जा सके कि वे गृहस्थ-धर्म ठीक-ठीक निभा रहे हैं। इसे छोड़िये, क्योंकि वह एक ऐसी बात है, जिस पर न समाज अंगुली उठाता है, न साधु-सन्तो को उपदेश देना पड़ता है। बड़े-बूढ़े और गुरुजन भी इस मामले मे चुप्पी साधे रहते हैं। इससे यह तो नहीं मान लेना चाहिए कि इसमे न समाज का नुकसान है, न देश का, न गृहस्थ का नुकसान है। इसे दम्पति अपने-आप सोचेंगे, इस वक्त न सही, जरूरत पड़ने पर वे अपने को सँभाल लेंगे। अक्ल ठोकर खाकर आती है, एक दिन आकर रहेगी। पर ब्रह्मचर्य की मिट्टी तो सैकड़ो तरह से पलीद की जा रही है। पश्चिम की गरम और गदी हवा को ठडी और खुशबूदार मान लिया गया है। अमेरिका यूरोप शायद वेश्याओं के बगैर न रह

सकते हों, पर जब उनके बगैर चीन रह सकता है, तो हिंदुस्तान क्यों नहीं रह सकता ?

वेश्याओं के रूप में व्यभिचार धर्माचार

न जाने कब से वेश्याएँ धर्माचार का अंग बनी हुई हैं। गहराई में जाने से ऐसा लगने लगता है, इनका होना जरूरी है। धर्माचार को कायम रखने के लिए जब किसी धर्माचारी ने इनकी स्थापना की होगी, तब उनका क्या रूप रहा होगा, इसका कुछ पता चला है, पर पूरा-पूरा नहीं। चीन देश आजकल अपने युवा-युवतियों का चरित्र बनाने पर तुला है। वह जी-जान से कोशिश कर रहा है कि उसके युवा-युवतियों के चेहरे गुलाब के फूल जैसे खिले हों। जो लोग चीन हो आये हैं या जो चीन के लड़के-लड़कियों में हिल-मिल कर रहे हैं, वे यह रिपोर्ट देते हैं कि सच-मुच आज चीन में कोई पीला चेहरा नहीं दिखाई देता। चीन-वालों की गिनती पीतवर्ण में की जाती है। पर उनके चेहरे सुर्ख हैं। वहाँ वेश्याएँ हैं, पर वे आज की वेश्याएँ है। उनके चरित्र से उन वेश्याओं के चरित्र का अनुमान नहीं हो सकता, जिनकी स्थापना धर्माचारियों ने की। इसे छोड़िये, यह खोज का विषय है, इन पंक्तियों का विषय नहीं। इस वक्त हमें यह देखना है कि वेश्याओं के रूप में व्यभिचार, धर्माचार के नाम पर क्यों फैला हुआ है ? उसको कैसे उस तल पर लाया जाय, जिस तल पर रहने का वह हकदार है ? दिल्ली, कलकत्ता, बंबई, मद्रास जैसे बड़े नगरों में वेश्याओं ने जो नया रूप लिया है, वह डरानेवाला है। वहाँ व्यभिचार की पराकाष्ठा हो गयी है। वेश्याओं का होना धर्माचार का अंग है। इस बात को लेकर उसे निस्सीम बना बैठना एकदम अधर्म है। पर

यह आवाज उठाये कौन ? कानून उसे नहीं रोकता, धर्मशास्त्र उसे नहीं टोकता, समाज की निगाह उधर नहीं जाती। बड़े-बूढ़े अपनी जवानी याद करके चुप बैठे रहने में ही अपना भला समझते हैं। रह गये व्यक्तियों के माँ-बाप, जिनके आजकल के कमाऊ बेटे या पढ़ी-लिखी बेटियाँ कभी कुछ कर देती हैं। उनके पास भी जवाब मौजूद है : 'यह न धर्म के खिलाफ है, न समाज के लिए नुकसान पहुँचानेवाला।' जिस चीन से उन्हें संयम सीखना चाहिए था, उसे असंयम की ढाल बनाकर वे इस तरह पेश करते हैं कि 'चीन में जितनी आजादी लड़के-लड़कियों को मिली हुई है, उतनी के हम हकदार क्यों नहीं ?'

व्यभिचार धर्माचार बने, यह न कहा जा सकता है, न लिखा जा सकता है और न इसे कान ही बरदाश्त कर सकते है, पर वह ऐसा बना तो है। धर्माचार कब, क्या रूप ले ले, इसका ठिकाना नहीं। विवाह के ऐसे अनोखे नियम दुनिया में फैले हैं, जिनको सुनकर सयमी मनुष्य के दिल काँप जाते हैं। उत्तरी भारत मे एक स्त्री के कई पति हो सकते हैं। इससे कोई यह न समझे कि वहाँ औरत कई पति करने के लिए आजाद है। नहीं, ऐसी आजादी वहाँ नहीं। उसे तो अपने कई पति होने का पता भी नहीं रहता। उसे जब कोई मर्द ब्याह लाता है, तो रिवाज के अनुसार वह उसके सब भाइयो की औरत बन जाती है। चाहे वे भाई उस वक्त घर मे मौजूद न हों, अभी उन्होने जन्म भी न लिया हो। इसमे औरत को आजादी कहाँ ? औरत ने कहाँ पाँच पति से शादी की ? यह खुला व्यभिचार धर्माचार बना हुआ है। न इस पर कोई अंगुली उठाता है, न रोक सकता है। खोजियों ने इतना पता जरूर लगा लिया कि इसकी जड़ मे है गरीबी। वहाँ सब भाई मिलकर रहते हैं। अगर वे पाँच हैं, तो पाँच औरतो को कहाँ से

खाने के लिए लायें ? एक से ही काम चला लेते हैं। यह धर्माचार नहीं, व्यभिचार है। व्यभिचार वह, जिससे समाज को नुकसान पहुँचे। धर्माचार वह, जिससे समाज की भलाई हो, समाज का उत्थान हो। इस बहुपतित्व से तो समाज की सरासर हानि हो रही है। लड़कियाँ विकने लगी हैं। जिस गुलामी को मर-कटकर खतम किया, वही वहाँ जन्म ले बैठी है। लड़कियों का चरित्र एकदम नीचे गिर गया ! वे व्याही हों, चाहे क्वाँरी हों, पीहर में पूरी तरह आजाद हैं। आजादी उनको अच्छे मानों में नहीं मिली है। अच्छे मानों की आजादी नियम सिखाती है। उनको बुरे मानों में आजादी मिली है, जिसे गुलामी समझना चाहिए। वे असंयमी वन गयी हैं, बनती जा रही हैं; फिर भी उनका यह काम धर्माचार तो है ही।

इस विषय में आदमी पहले ही से पूरा आजाद है। उसका मुश्किल से कोई ऐसा वृत्त हो सकता है, जो कहीं-न-कहीं धर्माचार की कोटि में न आ सके। रह गयी औरतें, उन्हें पूरी आजादी भले न हो, पर आदमी ने अपने मतलव से उन्हें ऐसी जगह वैठा दिया है, जहाँ दुनिया तो यह समझती है कि वे पूरी आजाद हैं, पर वे हर तरह गुलाम बनी हुई हैं। इसमें क्या आजादी ? एक मेहमान आता है। जिस तरह उसे खाने-पीने की चीजें दी जाती हैं, वैसे ही उसे मेजवान अपनी औरत को देता है। और यह कहलाता है, धर्माचार ! शिष्टाचार !! यह रिवाज हिन्दुस्तान में नहीं, पर 'हेटी' नाम की एक जाति में है, जो अफ्रीका और उसके आसपास टापुओं में वसी है। पर हिन्दुस्तान में इससे मिलता-जुलता धर्माचार मौजूद है। उत्तरीय भारत के एक कोने में साधुओं के साथ वहाँ की एक जाति यही वर्ताव करती है, जो हेटी-जाति

में प्रचलित है। अन्तर इतना ही है कि हिन्दुस्तान में वह अपनी व्याहता को न भेजकर अपनी क्वॉरी कन्या को पेश करता है। खुलासा यह कि हर किस्म का व्यभिचार कहीं-न-कहीं धर्माचार का रूप लिये आजादी के साथ चल रहा है।

धन, जन, धरती, मकान, वस्त्र, इन्हें अपनाते जाना और हद न बॉधना—इसे कहते हैं "परिग्रह"। इनमे से कोई रत्तीभर अगर मालिक की मर्जी के खिलाफ ले ले, तो वह लड़ने-मरने के लिए तैयार मिलेगा। कौरव-पाडवों में जमीन के ऊपर झगडा हुआ था। कौरवो का यही तो कहना था कि वह इतनी भी जमीन पाडवो को नहीं देंगे, जितनी सूई की नोक पर आती है। उतनी के लिए भी वे लाखो का खून बहा देंगे। इस तरह की ममता बडी दुखदाई होती है, नतीजा ऑखो के सामने है। धर्माचारियो ने परिग्रह को पाप माना है। दुनिया का व्यवहार ठीक चलता रहे, इसलिए उसकी इजाजत दी है, पर उसकी हद बॉधी है। आज वह हद टूट चली। इस तरह का परिग्रह धर्माचार बन बैठा है। इतना दुखदाई बन बैठा कि दुनिया तडप उठी। उसकी तड़प ने मार्क्स ऋषि का रूप ले लिया। उसने वह तूफान उठाया कि सारी दुनिया हिल गयी। आधी दुनिया आज उसके साथ है, दूसरी आधी खिलाफ। कितनी अनोखी बात है? वह अधर्माचार के खिलाफ आवाज उठा रहा है, धर्माचार फैला रहा है और अधर्माचारी उस धर्माचारी को अधर्माचारी कहते हैं। दुनिया मे उसे बदनाम करते हैं। चोर कोतवाल को डॉट रहा है। दुनिया खड़ी-खडी तमाशा देख रही है।

लालची मूर्ख होता है

धर्माचार ने अकेला यही ऐसा भयानक रूप अख्तियार किया, जिसके खिलाफ एक महापुरुष को जन्म लेने की जरूरत पड़ी।

सचमुच यह है भी ऐसा अधर्म, जिससे दुनिया काँप उठती है। परिग्रह का सीधा-सादा नाम है, लालच ! लालची दुनिया का नुकसान तो करता ही है, कभी-कभी वह अपना भी इतना नुकसान कर बैठता है कि लोग उसकी बेवकूफी पर हँसने लगते हैं। लालची मूरख न हो, यह हो नहीं सकता। शायद यही सोचकर भारत के किसी कलाकार ने लक्ष्मी को उल्लू पर सवार किया है। पैसेवाले सचमुच कभी-कभी वह उल्लूपन कर बैठते हैं, जिसकी हद नहीं। परिग्रह अपनी सीमा लाँघकर आफत बन जाता है। वही सीमा के अन्दर ही सुखद होता है। जरूरत से ज्यादा अपनाकर करना भी क्या ? किसे यह तजुरबा नहीं कि जरूरत से ज्यादा चीजें इकट्ठी होकर सार-सँभाल में ही मालिक का इतना वक्त खा जाती हैं, जितना उनके करने में नहीं लगा था।

परिग्रह पसीने की कमाई ?

परिग्रह अधर्माचार है, यह कभी किसीके गले नहीं उतर सकता। उसके गले तो कभी नहीं उतर सकता, जिसने खून-पसीना एक कर उसको इकट्ठा किया है। धन-दौलत को छोड़िये। जो बच्चा पसीना बहाकर, थककर, बोझे भरकर, नदी पर से पत्थरों के टुकड़े उठा लाता है, क्या वह कभी उनको परिग्रह समझता है या यह समझता है कि उसने कुछ बुरा किया ? 'मेहनत से लाया है, वह क्यों उनका मालिक नहीं ?'—उसका यह सोचना तो ठीक, पर वह यह भी तो सोचे कि उसके पत्थरों में से जब एक भी पत्थर उसकी बहन ले लेती है, तो वह लड़ाई खड़ी कर बैठता है। वह उनको बखेर-बखेरकर घरभर में कूड़ा कर देता है, जिसे रोज उसकी बहन को झाड़ना पड़ता है, यह कितनी तकलीफ खड़ी कर

रहा है। उन पत्थरों की वजह से उसे तकलीफ और घरभर को तकलीफ! यह पापाचार नहीं, तो और क्या? पैसेवालों का इस विषय में बच्चों-जैसा हाल होता है। वे अपनी कमाई को पसीने की कमाई मानते हैं। उसे अलहदा करने से इतना दुख मानते हैं, मानो उनका मांस उनकी देह से काटा जा रहा हो। यही हाल उन पैसेवालों का भी है, जिन्होंने वकालत से पैसा कमाया होता है या सरकारी नौकरी से कमाया होता है या रिश्वत से कमाया होता है। वे भी उसे पसीने की कमाई ही समझते हैं। चोर-डाकू सब अपने माल को पसीने की कमाई मानते हैं। सब-के-सब ईश्वर की प्रार्थना करने हैं, ईश्वर की भक्ति में मौके पर जान लडाने के लिए तैयार मिलेंगे। अब कहिये, वे यह क्यों न समझें कि यह सब ईश्वर की देन है। जो ईश्वर की देन है, वह पापाचार कैसे? खून-पसीने की कमाई तो धर्माचार ही होगी। डाकू और सिकन्दरवाली कथा किसने नहीं सुनी? डाकू ने सिकंदर बादशाह को बड़ा डाकू साबित कर दिया। साबित तो कर दिया, पर क्या किसी बादशाह या राजा ने आज तक अपने को डाकू माना? उन्होंने लूट को धर्म की ही कमाई समझा। रघुवंशियों की लूट पर कालिदास जैसे कवि ने काव्य लिख डाला। उस लूट का हाल हिन्दू बड़ी भक्ति से सुनते है, उसे सुनकर गद्‌गद हो जाते हैं। सूर्पनखा की नाक काटने में लछमन को हिन्दू बहादुरी का तमगा दे डालते हैं। अब कहिये, उन लोगों के गले कैसे उतारा जाय कि परिग्रह पापाचार है, धर्माचार नहीं?

जनक और भरत के दृष्टान्त

परिग्रह के मामले में पंडितों ने एक और कमाल कर दिखाया है। उनका कहना है, परिग्रह ममता है। ममता छोड़नी चाहिए,

धन-दौलत छोड़ने की जरूरत नहीं। उन्हें एक उदाहरण भी मिल गया, जल में कमल। कमल के पत्ते पर बूंद नहीं टिक पाती। पर चिकने घड़े पर भी बूंद नहीं टिकती। चिकने घड़े पर बूंद न टिकने की कहावत वेश्याओं के लिए काम आती है, पर कमल पर बूंद न टिकने की बात धार्मिक लोगों के काम आने लगी। इतना ही नहीं, पंडितों ने राजा जनक और भरत, दो राजा तैयार कर दिये, जो जल मे कमल की तरह रहते थे। उन्होंने यह सोचने की जरा भी तकलीफ नहीं की कि कमबख्त वह कमल सिर से पैर तक पानी का पुंज बना रहता है।

वीर-पूजा के बेतुके ढंग

कहने के लिए हिंदुस्तान ने सत्य-अहिंसा के नाम पर खास तौर से और अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के नाम पर आम तौर से आवाज उठाकर स्वराज्य हासिल किया है। पर स्वराज्य मिलने से कुछ ही दिन पहले और कुछ दिन बाद तक जो सचाई, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की मिट्टी पलीद हुई है, वह किसीकी आँखो से छिपी नहीं है। हिंदुस्तान की अहिंसा की वेदी पर ढाई लाख हिंदू और ढाई लाख मुसलमान बलिदान होकर हिंदुस्तानियों के हाथ स्वराज्य लगा है। ये पाँच लाख अहिंसात्मक आंदोलन करते हुए कुछ अंग्रेजों की गोली से नहीं मरे, एक-दूसरे का गला काटकर मरे थे। इन हिन्दू और मुसलमानों में ऐसे आदमी भी शामिल थे, जो सत्ताईस बरस से सत्य और अहिंसा का राग अलापते आ रहे थे। भले ही इन पाँच लाख की हिंसा को इने-गिने आदमी अधर्म नाम से पुकारते हों, पर अगर स्वराज्य लेना धर्म है, तो यह सब हिंसा अधर्म कैसे समझी जा सकती है? क्या अधर्म के बीज से धर्म

का अंकुर फूट सकता है? क्या उससे धर्म का पेड़ खड़ा हो सकता है? क्या उस पेड से धर्म के फल मिल सकते हैं? पर स्वराज्य तो मिल ही गया और स्वराज्य को हिन्दुस्तान के ऋषियों ने धर्म माना है। तब अगर पाँच लाख की हिंसा को आप अधर्म कहते हैं, तो उससे धर्म कैसे मिला? अगर धर्म कहते हैं तो उसकी बुरे शब्दों के साथ याद क्यों? फिर तो उन सब पाँच लाख को शहीद ही समझना चाहिए। कोई समझे या न समझे, हिन्दू अपने हिन्दुओं को, जो इस हिंदू-मुसलिम लड़ाई में काम आये, धर्म के नाम पर मरा समझते हैं, उन्हें शहीद समझते हैं। मौका पाकर कभी उनकी समाधि भी बना बैठेंगे। यही हाल मुसलमानों का है। वे उन मुसलमानों को शहीद कहते हैं, जो इस आपसी दंगे में काम आये। हिन्दुओं में सौ मुसलमान मारनेवाला 'कंसारि' की तरह 'म्लेच्छारि' समझा जायगा और मुसलमानों में सौ हिन्दुओं को मारनेवाला 'हजरत अली' की तरह 'मुजाहिदे आजम' का खिताब पायेगा। धर्म की इस तरह सदा मिट्टी-पलीद होती रही है और होती रहेगी।

इसका कारण क्या है? कारण है, वीर-पूजा के बेतुके ढंग, जिनसे आज तक काम लिया जाता रहा और आज भी लिया जा रहा है। जिसे हम धार्मिक नेता मान लेते हैं, उसके सब कामों को धर्म समझने लगते हैं। आदमी कितने ही ऊँचे दरजे पर क्यों न पहुँच जाय, वह ऐसे काम किये बगैर नहीं रह सकता, जो अधर्म न हों। उन अधर्मभरे कामों की तारीफ करना धर्म को हमेशा के लिए बिगाड़ना है। अधर्म को हर हालत में अधर्म ही मानना पड़ेगा। तभी अधर्म से छुटकारा हो सकता है। महाभारतकार ने युधिष्ठिर से अप्रत्यक्ष थोड़ा-सा झूठ तो बुलवाया, पर उतने थोड़े की भी सजा दी। ऐसी सजाएँ

ार अवतारी पुरुषों के साथ भी रखी जातीं, तो आज दुनिया
ं के मामले में इतनी पिछड़ी हुई न दिखाई देती, जितनी
ज है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर अगर पुराण-रचना
। गयी होती, तो आज पुराण पढ़कर मौके-बे-मौके जो गलत
ायदा उठाया जाता है और उसके हवाले पर अधर्म-क्रियाएँ
ी जाती हैं, वे न की जा सकतीं।

आज का धर्म

महावीर-बुद्ध से लेकर मार्क्स तक किसी ऋषि ने कोई नया धर्म नहीं दिया, कोई नयी बात नहीं कही। महावीर ने पाँच अणुव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—दिये। बुद्ध ने अष्टमार्ग बताये। मार्क्स ने 'डायलेक्टिस' दिया। ये कोई नयी चीजें नहीं थीं। बीसवीं सदी में गाधीजी अपने ग्यारह व्रत छोड़ गये। इनमें से कोई एक नया नहीं। फिर ये सब महापुरुष किस बात के? और क्यों दुनिया पागल बनकर इन्हें पूजती है, इनके गीत गाती है? गांधीजी तो सारी दुनिया के देवता बन बैठे हैं, जब कि कोई नयी बात दुनिया को नहीं दे गये। कुछ लोगो ने तो देवताओं को एक से ज्यादा सिर लगाकर, दो से ज्यादा हाथ लगाकर नये ढंग का बनाया भी है। पर महावीर, बुद्ध से लेकर मार्क्स तक के देवताओं को किसीने ऐसा अनोखा रूप देने की कोशिश नहीं की। गाधीजी तो तब के देखे हुए थे। अब जब मनुष्य अनोखे ढंग का पैदा ही नहीं होता, तब वह अनोखी बात कह भी कहाँ से देगा? अनोखी बात कही भी नहीं जा सकती। हर विद्या के नियम प्रकृति मे पहले ही से मौजूद रहते हैं। टुकड़े-टुकड़े मे हर विद्या हम सबके पास है। ऋषि-मुनि, हकीम-वैद, अवतार-पैगम्बर इन्हीं फैले नियमो को ढग मे ला देते हैं। यह काम कम नहीं, इसकी जितनी कद्र की जाय, थोड़ी। पर इस काम से किसीको अवतार या पैगम्बर नहीं कहा जा सकता। अवतार-पैगम्बर की पदवी तो मिलती है उसको, जो इन औजारों से नयी-नयी चीजे बनाकर खड़ा कर देता है।

बढ़ई के औजार कितने ? राज के औजार कितने ? लोहार के औजार कितने ? बहुत थोड़े और सब-के-सब पुराने। पर उनसे तो ताजमहल बन गया। जिनसे ताजमहल बना, उन्हीं औजारों से मामूली मकान बनते हैं, ताज बनानेवाले की तारीफ होनी ही चाहिए। महावीर से मार्क्स तक के सब देवताओं ने इन्हीं मामूली औजारों की करामात दिखायी। उनको दुनिया याद करती है। गांधी ने ग्यारह व्रतों से वह तमाशा दिखाया, जिससे दुनिया हिल गयी। इक्का-दुक्का यह कहकर उनकी सेवाओं की तरफ से आँख हटा सकता है या उनकी सेवाओं को ठुकरा सकता है कि गांधी ने दुनिया को कौन-सी नयी चीज दी, कौन-सा नया दर्शन दिया ? फिर उसे क्यों अवतार माना जाय, उसे क्यों पैगम्बर समझा जाय ? पर दुनिया उन एक-दो की बात सुनने से रही। वह सब समझती है, उसे कोई धोखा नहीं दे सकता। वह खोटे को नहीं पूजेगी, खरे को ही पूजेगी। सिंदूर-लगा पत्थर पुज सकता है, पर उसके पूजनेवाले बहुत थोड़े ही होंगे। पत्थर भी तो थोड़ों के बहुत काम आ जाता है, इसीसे तो पुजता है।

बस, तो सार यही है कि जो अटल सचाई से जितना ज्यादा काम निकाल सकता है, वह दुनिया से उतनी ही पूजा पा जाता है।

गांधीजी के छह और व्रत

पाँच व्रतों पर ऊपर लिखा जा चुका। गांधीजी के छह व्रत रह गये। वे हैं : अभय, स्पर्शास्पर्श-भावना, स्वदेशी, अस्वाद, सर्व-धर्म-समभाव और शरीर-श्रम।

पहले बताये पाँच और ये छह नये तो हैं ही नहीं, घर-घर

में चाहे न मिले, मोहल्ले-मोहल्ले और देश-देश में मिल सकते हैं। किसी एक में न मिलें, अलग-अलग जगह मिल सकते हैं। इन सबका पालन करना धर्म है। ये सब गांधीजी से पहले पाले जाते थे और धर्म समझे जाते थे। पर ये ही सब कहीं-कहीं अधर्म समझे जाते थे और इनके विपरीत धर्म धर्म माने जाते थे।

अभय

अभय धर्म है, भय अधर्म है। भय माने डर। पर ईश्वर से डरना धर्म है। उसी तरह अवतार-पैगम्बर से डरना धर्म है, माता-पिता, गुरुजनों से डरना धर्म है। यह बात रिवाज में है कि 'यह कैसा पापी है कि इसे किसीका डर ही नहीं'। बच्चों को डराने का घर-घर में रिवाज है। डर दिखाकर धर्म की तालीम दी जाती है। दो शब्दों में डर धर्म से भी ज्यादा जरूरी बन गया है। धर्म ही बन गया है।

स्पर्श-भावना

यह व्रत बताता है, कोई अछूत नहीं। कजर-मेहतर सबको छू लेना चाहिए। उनको न छूना या छूने पर अपने-आपको अपवित्र समझना अधर्म है। उनको निधड़क होकर छूना चाहिए। उनके हाथ का बना खाना तक खा लेना चाहिए। यही धर्म है। पर धर्म बना हुआ है यह कि अछूतों को कभी न छुओ। इस व्रत का भी उलटा धर्म के नाम पर खूब चलता रहा है और चलता रहेगा।

स्वदेशी

स्वदेशी का मतलब यही है कि अपने देश में बनी चीजें काम में लायी जायँ। यही धर्म है। दूसरे देशों की चीजें काम

में न लायी जायँ। विदेशी चीज काम में लाना अधर्म है। यह व्रत भी खूब तेजी से तोड़ा जा रहा है और धर्म के नाम पर तोड़ा जा रहा है। विदेशी चीजों का इस्तेमाल करना धर्म बन गया है। विदेशी लोग देश में घुस-घुसकर कारखाने खोल रहे हैं और स्वदेशी-व्रत की पूर्ति कर रहे हैं। कैसी अनोखी विडम्बना है! गाय के दूध का व्रत लेकर विलायत से आये हुए गाय के दूध के डब्बे का दूध पीना गाय के दूध के व्रत की विडम्बना नहीं तो क्या है? इस तरह की विडम्बना में जब गुरुजन फँस जायँ, तब अधर्म धर्म की गद्दी पर आ बैठे, तो बड़ी बात क्या?

अस्वाद

अस्वाद-व्रत है, धर्म है। चटोरपन अव्रत है और अधर्म है। पर जिस तरह जल में कमल का उदाहरण देकर जनक और भरत राजा तैयार किये गये और उन्हें परिग्रह की छूट दे दी गयी, वैसे ही इस व्रत के राजा भी तैयार किये जा सकते हैं और चटोरपन बड़ी आसानी से अस्वाद-व्रत की जगह ले सकता है। अस्वाद व्रत अगर हलवे से दूध-गेहूँ-गन्ने की तरफ दौड़े, तब तो ठीक और यदि सोहन-हलवे की तरफ दौड़े, तब यही समझना चाहिए कि वह अधर्म के मार्ग पर चला जा रहा है। हलवा दूध, गेहूँ, गन्ना की ही तो देन है। अस्वाद-व्रत चटोरों के हाथ पड़कर चटोरपन बनकर रहेगा और फिर व्रत और धर्म तो बन ही जायगा।

सर्वधर्म-समानत्व

सर्व-धर्म-समभाव व्रत है, धर्म भी है। पर यह धर्म-समभाव धर्मों के रिवाज-समभाव का रूप लेकर रहेगा और रिवाज-

सभभाव ही धर्म माना जाने लगेगा, जो धर्म-समभाव की दृष्टि से बिलकुल अधर्म होगा। धर्म-समभाव का अर्थ है : सब धर्मवाले मिलकर रहें, मिलकर एक कुटुम्ब बन जायँ। अगर कहीं यह हुआ कि पहले लोग राम पूजते थे और अब बुद्ध और महावीर की पूजा करें या मुहम्मद साहब की मूरत बनायें या सब धर्मों का मिला-जुला एक मन्दिर तैयार करें, तो यह होगी धर्म-समभाव की विडम्बना! फिर इस बात पर ही सिर-फुड़ौवल होगी कि उनके धर्म की मूरत दूसरे धर्मवाले से छोटी क्यों? दायें-बाँये क्यों, बीच में क्यों नहीं? उनके धर्म की प्रार्थना पीछे क्यों, पहले क्यों नहीं या पहले क्यों, पीछे क्यों नहीं? आदि-आदि। धर्म-असमभाव जिस तरह पहले धर्म बना हुआ था, वैसे ही अब भी बना रहेगा।

शरीर-श्रम

शरीर-श्रम व्रत है, धर्म है, और यह तो एक तरह शरीर का स्वभाव भी है। पर राम-नाम की तरह 'शरीर-श्रम' नाम का जाप भी तो शरीर-श्रम ही माना जायगा और जो असल में शरीर-अश्रम-यानी अव्रत और अधर्म होगा। पर पाँच अपने भाइयों के साथ इस व्रत का भी जाप चल पड़ा है। उसे अधर्म कहने की हिम्मत कौन कर सकता है?

मनुष्य का स्वभाव है, कुछ भी करे, वह उसे धर्म का रूप दे देता है और उन्हीं धर्मों में उसकी गिनती करा देता है, जिनको ऋषियों, अवतारों और पैगम्बरों ने माना होता है।

आज का धर्म यह है कि :

१ हम अपने पर विश्वास करना सीखें।

२. हम जो बात कहें, उसके लिए ग्रन्थों का हवाला या

प्रमाण न दें, प्रमाण के आधार पर दूसरों के मन में बिठाने की कोशिश न करें। जितना हमारा चरित्र-बल है, उसीके आधार पर लोगों को हम अपनी बात मानने दें।

३. ग्रन्थों में लिखी बातों को एकदम न मान लें। हमें चाहिए कि हम उन पर अमल करें और देखें कि उनका क्या परिणाम होता है। अगर वही परिणाम हो, जो ग्रन्थ में लिखा है, तब तो ठीक; नहीं तो अपने करने के ढंग में बदलाव करें और फिर परिणाम ठीक न निकले, तो उसे छोड़ बैठें। दूसरे को उपदेश न दें। अगर ठीक निकले, तो ग्रन्थ का हवाला दिये बिना उसे अपनी बात कहकर लोगों को करने के लिए उकसाये।

४. हर ऋषि ने अपने से पहले ऋषियों की कदर की है, उनके ग्रन्थों को पढ़ा है; पर सत्य जैसे मोटे-से-मोटे व्रत को भी जब तक अपनी कसौटी पर नहीं देख लिया, तब तक औरों को सत्य बोलने को नहीं कहा। पुराने ऋषियों का हवाला देकर लोगों को जोखम में नहीं डाला। लोग हवाले के आधार पर जोखम में पड़ते भी नहीं। वह कहनेवालों का ही विश्वास करते हैं, तभी अपने को जोखम में डालते हैं।

५. आज का धर्म न बीते कल से मेल खायेगा, न अगले कल काम आ सकेगा। वह आज की समस्याओं को हल करेगा। यह समझकर जब हम काम में लगेंगे, तब सब पुराने धर्म और उनके सिद्धान्त हमारे हाथ में औजार बन जायँगे और हम उनसे वे ही काम ले सकेंगे, जो आज जरूरी हैं। वैसी ही चीजें तैयार कर सकेंगे, जिनकी आज जरूरत है। वैसे ही रिवाज खड़े कर देंगे, जिनसे आज समाज को फायदा पहुँचे। पुराने रिवाज और पुराने तरीके बीते कल कितने ही अच्छे क्यों न रहे हों, समाज को कितना ही लाभ क्यों न [illegible] हों,

	रु० नये पैसे
सर्वोदय-सयोजन	१— ०
गाधी : राजनैतिक अध्ययन	०—५०
सामाजिक क्रान्ति और भूदान	०—३१
गाँव का गोकुल	०—२५
व्याज बट्टा	०—२५
भूदान दीपिका	०—१३
पूर्व बुनियादी	०—५०
राजनीति से लोकनीति की ओर	०—५०
नवभारत	४— ०
सत्सग	०—५०
क्राति की राह पर	१— ०
क्राति की ओर	१— ०
सर्वोदय पद-यात्रा	१— ०
आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१— ०

भूदान
सत्याग्र
सर्वोदय
क्राति क
सामूहि
साम्ययोग
राज्यव्यव
भूमि-क्रा
ग्रामशाल
मजदूरों र
सामूहिक
सत विनो-
ग्राम स्वा
सर्वे भूमि

[ENGLISH PUBLICA

The Economics of Peace
Swaraj Shastra
Progress of a Pilgrimage
Bhoodan as seen by the West
Bhoodan to Gramdan
Bhoodan-Yajna (Navajivan)
M K Gandhi
Planning for Sarvodaya
The Ideology of the Charkha

(J C KUMARAPPA

Why the Village Movement ?
Non-Violent Economy and World Peac
Economy of Permanence
Gandhian Economy and Other Essays
Lessons from Europe
Philosophy of Work and Other Essays
Overall Plan for Rural Development